





भद्रास-इयासदनना डिद्वान नस जे लुतपूर्व गवर्नर जनरल श्री सी राजगोपालाचारी-  
 प्र पाद न्यायार्पदेव श्रीमद विजयलक्ष्मणस्यैरीश्वर्य्य मङ्गलानना नतभरत के आशीर्वाद भागी रथा छे



પિતાનાદાર

પુ પા અ ચાર્જેટ ન શ્રીમદ્ વિજ  
લક્ષ્મણ સૂરીશ્વરજી મહારાજ

રેખક

નવાવસાની અધિકુત તિન

પુ પન્થાસજી

શ્રી મીતિવિજયજી ગણિવર



સ્વ હેમકુવંખહેન



ભાગિનિસાગી સ્વ ના ॥ ગેવજી માણેમ્ય ના નર્મપની  
સ્વ હેમકુવંખહેના આમના નવામે મા પુસ્ત  
તેમ ॥ ત્રપુસે હોપનાન તથા શીરજનાન તરી  
સમેમ ભેટ [હાન મુખઈ]



षमो निपाण

आत्म-कमल-लघि-सूरीश्वरजी  
जैन-ग्रन्थमाला का १८ वाँ पुष्प

# आर्हत-धर्म-प्रकाश ( जैन धर्म )

लेखक

व्याख्यान वाचस्पति कविकुल द्विज पृ० पा आचार्य

श्रीमद्विजयजीपिपरीश्वरजी महाराज

के पट्टप्रमाणक

दक्षिण दीपक पृ० आचार्यदेव श्रीमद्विजयजीमणिसूरीश्वरजी

महाराज

४ विप्ररत्न

कविकुल तिलक

पृ० पन्यास जी श्री कीर्तिविजयगणिसर महाराज

सम्पादक

ज्ञानचन्द्र

विद्याविनोद

प्रकाशक

बी० बी० मेहता

प्रथम संस्करण ५०००

भा आत्म बमन ली सूर्यदरजा नैन ज्ञान मान्त्रि, द्वितीय संस्करण १०००

६ ऐस लन, दादर ( पश्चिम ) बम्बई २८

१०० प्रतियाँ—लाठी निवासी स्वर्गीय दोषी केशवजी माणिकचंद्र का  
धर्मपत्नी स्व० हमरुँवर की आत्मा के धेयार्थ उनरु  
मुपुत्र डाटंगल तथा धीरालाल की ओर से सप्रेम भेंट ।

### आर्हत धर्म प्रकाश

गुजराती	प्रथम संस्करण	५०००
	द्वितीय संस्करण	१०००
	तृतीय संस्करण	२२५०
	चतुर्थ संस्करण	१७००
हिन्दी	प्रथम संस्करण	५०००
	द्वितीय संस्करण	१०००
तमिल		५०००
अंग्रेजी		१५०००
बनारस		१८०००
मराठी		५०००
तेलुगु		१०००
		<hr/> ६०,०००

अनुवादक

न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री

सदर—बलदेवनाथ सखार प्रेस, फाशापुरा, वाराणसी ।

## विषय-सूची

	पृष्ठ
जेनधर्म	१-३
आध्ययजनक विशालता	४-७
जेन-साधु	८-१०
आत्मा	११-१४
कर्म	१५-२०
इश्वर की उपासना	२१-२२
इश्वर का कर्तृत्व	२३-२४
जेन	२५
गृहस्थ के अंत	२६-३१
स्यादवाद	३२-३६
षड्द्रव्य	३७-३९
जेन-तप	४०
ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष	४१
रात्रिभोजन	४२-४३
आधुनिक विज्ञान	४४-४०
जेन धर्म अनादिकालीन है	४१
जगत की दृष्टि में	४२-४६
पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण	४७-६४

---



## प्राक्कथन

यद् तो स्वाभाविक बात है कि, कोई भी 'यत्ति' व्याधिग्रस्त स्थिति में आकुल व्याकुल बना हुआ अपनी रोग निवृत्ति के लिये आतुर बने बिना रहना नहीं, परन्तु जब तक उसकी चिकित्सा की योग्य साधन सामग्री उपलब्ध न हो, तब तक उसके मनोरथ सफल नहीं होते। उसी तरह स मौल, रुधिर और मल मूत्र जैसे अगुचि पदार्थों से भरे हुए दुर्गन्धि युक्त देश के कारागृह में जन्म जरा मृत्यु रूपी महाराज की पीड़ा से मुक्त होने की आतुरता मघावी मानव प्राणी में होना स्वाभाविक है और उसके लिए जनक तरह के विचार एवं उद्घोष होना भी अनिवार्य है। मानवजगत् के इस प्रसार के सद्विचार को तत्त्ववेत्तक वृत्ति (Philosophic attitude) कहते हैं। खासकर हमारे भारतवासियों में आत्मधृष्टा के प्रबल संस्कारों के कारण उनमें तत्त्वज्ञान में मनन मयन एवं अधिक प्रवेश होने से 'मुक्तिपाद' हमारे देश का महामन्त्र बना हुआ है और भारत की चारा दिशाओं में "सा विद्या या विमुक्तये" का ब्रह्मावक्य गूँज रहा है। परन्तु, मुक्तिमार्ग को निष्कण्ठ, निराचार और मुलम्भ प्राप्य बनाने में आर्दत दशन (जैन-दशन) को ही सर्वोच्च स्थान दिया जाता है क्योंकि मुक्तिमार्ग की सिद्धि के लिये व्यवस्थित और पञ्चतिसर साधन-सामग्री की रचना सगज्ज सुदूर दृग से वैसी इस दशन में पायी जाती है, वैसी अव्यञ्चनों में प्रसर नहीं आती।

यद्यपि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अवरिग्रह आदि पाँच मौलिक सिद्धान्त (Fundamental Principles) प्रायः सब ही दान मानते हैं, परन्तु उनकी जीवन में (Practicable in the life) चरित्राथ कैसे करना, उसका सरल और सिद्ध उपाय जैनदशन में बड़ा हा विद्य है। अर्थात् उत्तरोत्तर विस्तृत थेणी (Evolutionary spiritual ladder), जिसको जैन परिभाषा में 'गुणस्थानक' कहते हैं,

और जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ जिसको मागणाद्वार (Classified groups) कहते हैं, बड़े ही मननीय और विचारणीय विषय हैं, जिनके अध्ययन से जैनदर्शन की विशेषता का स्वतः अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा।

जैन दर्शन का मन्तव्य है कि "युक्तिभाव मवेदुत्तम न पच सुक्ति-वर्णित प्रत्येक विषय में सुक्तिरूप से समझाने की शैली बड़ी सुन्दर है। किसी भी कार्य में उसके साधक, बाधक, द्योतक, घातक, पोषक, शोषक आदि सब ही विषयों पर गम्भीर विवेचन जैनदर्शन में पाया जाता है। इसका खास कारण जैन-दर्शन का सर्वोच्चसुन्दर स्याद्वाद न्याय है, जो (Central Doctrine) केन्द्रित सिद्धान्त समझा जाता है, जिसके प्रयोग से वस्तुस्थिति का भिन्न-भिन्न दृष्टि से सर्वदेशीय संपूर्ण बोध होता है। इसलिए, इस स्याद्वाद को अनेकान्तवाद अथवा अपेक्षवाद भी कहते हैं। पश्चात्त्य विद्वानों (Western Scholar) ने तो इस स्याद्वाद के सिद्धान्त की मुस्कट से प्रशंसा की है। उनकी तो यहाँ तक मान्यता है कि, यह सत्कार में संपद्य साधने की महाशक्ति (Unifying Force) है, जिसके प्रयोग से सत्कारभर के समस्त पारस्परिक विचारविरोध के दैनन्दि का सतोषजनक समाधान होता है। इसलिए, स्याद्वाद को (Unifying System of Philosophy) सुन्दर शक्तिशाली माना जाता है। डा० आइंस्टाइन जैसे सत्कार के सर्वोपरि विज्ञानवेत्ता के सापेक्षवाद (Theory of Relativity) की मान्यता कितने ही अर्थों में स्याद्वाद की छायामान है। कहने का सारांश यह है कि, स्याद्वाद का अदुत्तम साधन स्याद्वाद होने से, जैनदर्शन का समस्त दर्शन ही इसका स्थान है। इस दर्शन में कपोलकल्पित कल्पनाओं (Conceptions) अथवा भ्रमणाओं (Superstitions) का स्थान मात्र भी स्थान नहीं है। जिस अल्प विज्ञान के दैनन्दि के अर्थों में स्याद्वाद की व्यख्या हो रही है, उस सुचारु शासन (Systematic Management) के मूल तत्वों (Substances) के अर्थों में स्याद्वाद का

दगा मरा हुआ है। आधुनिक विज्ञानयुक्त उद्य (Rationalistic school of Philosophy) प्रमाणसिद्ध एन हेनरगनी दाननाम कहते हैं। विज्ञान की कितनी ही विस्तृतकारी शोध-उद्य (Scientific Researches) को बाहर आती हैं, उनका वन जैनसिद्धान्तों में पूव से हा लिया हुआ पाया जाता है—जैसे ध्वनि की गति, शक्ति और आरति (Sound & its Velocity etc), इतर (Ether) जैव सहकारा तत्व की मायता, उद्यान (light) प्रमा, तम, ग्या आतम आदि के परमाणु, पदाथ का अंतरपारगमन (Inter penetration), रनस्पति की मशाएँ (Instincts & feelings) जलके (Hydrogen and Oxygen) हायड्रोजन और ऑक्सीजन आदि तत्व तथा जगबिन्दु के समान पद और परमाणु (Atoms & Molecules) का मायता आदि अनेक वैज्ञानिक विषयों का विस्तृत वर्णन सेकड़ों वर्षों के प्राचीन जैनशास्त्रों में पाया जाता है। अभी तक विज्ञान की अति सूक्ष्म अन्तिम मायता इलेक्ट्रॉन और 'प्रोटोन' (Electrons & Protons) तक गयी है। परन्तु, जैन-दशन के कर्मिक वर्णना के परमाणु (Karmic molecule) जिनको अतीन्द्रिय ज्ञानदर्शनप्राप्त मान है, उनको तो 'अद्भुत ग्राह्य मोक्षमूल्य' कहना अत्युक्ति नहीं है क्योंकि इलेक्ट्रॉन प्रोटोन से कह गुन सूक्ष्म है, जो किसी प्रकार के सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) से भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। इसी प्रकार इस दर्शन का आत्मवाद, तत्त्ववाद, नियामक, सकलवाद, मायवाद आदि शर निषेध इतने गहन और सूक्ष्म हैं कि, विचार गील विद्यार्थी का इसके अध्ययन से सहज ही निरास हो जाता है कि, इस दर्शन के नियामक महारथी एन सुनधार कन महामेधारी और प्रजा प्रीट ही नहीं थे, परन्तु सबल और सज्जदर्शी थे—अन्वया ऐसी प्रख्या अलमय होती। भले ही सामान्य वग के लोग जैन-ज्ञान का महत्त्व न भी समने परन्तु बुद्धिवादी वग (Intellectual class) तो इसकी तरफ उद्य आकर्षित हुआ है। और, उसकी रूपरेखा (Outlines) समन की

उनमें बड़ा जिज्ञासा प्रकट हुई है। हमारी सखा 'जैन मिशन सोसाइटी' के पास दश दशान्तरों के कई लोगों की जैन साहित्य के लिये माँग आ रही है परन्तु जैन दर्शन के भिन्न भिन्न विषयों का निष्कर्षरूप (Nutshell form) एक छाटा निबन्ध हमारे पास तैयार न होने से हमारे मामलें उनकी माँग पूरी करने का प्रश्न था। दैवयोग से इस वष हमारे नगर के पुण्योदय से, महान् प्रभावशाली, प्रखर वक्ता, पूज्य आचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयलक्ष्मणशरीरवरजी महाराज का चातुर्मास हुआ और उनके विद्वत्ता से भरे हुए 'वाल्यान भवन' करने से यह भावना हुई कि, उन श्रीजी से ऐसा निबन्ध प्रकाशित करने की प्राथना की जावे। तत्पश्चात् हमने प्राथना की और संतोषजनक प्रत्युत्तर मिला। अर्थात् उन्होंने अपने विद्वान् शिष्य पण्य श्री कीर्तिविजयजी शशिबर को इस बार में सकेत किया। पूज्य कीर्तिविजयजी ने उनकी आज्ञानुसार सरल दृग से और सुन्दर शैली से सफ़्त मौलिक विषयों का साररूप यह निबन्ध तैयार किया। इसमें प्रतिपादन बहुत ही सुलभसंगत एवं बुद्धिमत् है, जिससे आम प्रजा लू लाम उठा सकती है। पूज्यभा के लिये दो शब्द प्रशंसा के कहे बिना रहा नहीं जाता क्योंकि कुछ दिनों तक उनकी क सत्तग का लाम और उनके प्रशस्त पुण्याय का अनुभूत हुआ है। वे बड़े कायकुशल और कुशाग्र बुद्धिसंपन्न हैं। कविशक्ति के साथ ही साथ ललितशक्ति भी बड़ी प्रखर है और जन माग-प्रभावना तथा धर्म प्रचार के लिये बड़ी उत्कठा रखते हैं और उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उन्होंने यह निबन्ध लिखने के लिये जो परिश्रम उठाया है, उसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं। मुझ आशा है कि पाठकवृन्द इस निबन्ध को आनन्द पढ़कर जैनधर्म का रहस्य समझने के साथ ही साथ आमविकास का यथाय लाभ उठावेंगे।

श्री पुढल्ल्तीय  
Red Hills  
P O Polai (Madras)  
Dated 11 1954

धर्मानुरागा  
श्रीरामदास

## भूमिका

एक साधारण व्यक्ति की बात तो जाना दाजिये, पढ़े लिखे और भारतीय साहित्य से परिचित का दावा करनेवाले 'व्यक्ति' भी जैन-साहित्य के सम्बन्ध में जो धारणा रखते हैं, उसकी अपेक्षा जैन साहित्य कहीं अधिक विज्ञान है। साहित्य, व्याकरण, दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, दक्षिण ज्ञान का फोड़ भी जग जैन-आचार्यों की लेखनी से अदृष्ट नहीं रहा। कहाँ तब का रत्न सम्बन्ध है, अग्रा आभार विचार में मुग्ध रहने पर भी, जैन आचार्यों ने ज्ञानोन्नयन में कभी अपनी दृष्टि संकुचित नहीं रखी—जैनता प्रार्थों पर भी उन्होंने अपनी लेखनी उगयी है, ठाही टीकाएँ लिखी हैं और जैनतर शास्त्रों की भी अपने मंदिरों में शताब्दियों तक रक्षा की है।

इन बाद के रचे गये जैन-ग्रन्थों में अतिरिक्त जैन सिद्धान्तों का मूल प्रमाण रूप आगम भी ४७ हैं—११ अंग, १० उपानिषद्, ६ छेद, ४ मूल, २ चूर्णिका तथा १० प्रकीर्णक। इन पर निर्मुक्ति, चूर्ण, भाष्य तथा टीकाएँ हैं। इस प्रकार मज्झिम कर पूरा जैन साहित्य इतना विज्ञान है कि, उसके गहराई ज्ञान की कीमत कहे, एकांगी ज्ञान भी पूर्ण रूप से प्राप्त करना एक बड़े परिश्रम और अध्ययन का कार्य है।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि, यह इसी भारतवर्ष के आयोजन में उत्पन्न हुआ, यही उसके अपने अच्छे बुरे दिन डेरे और समय-समय पर जब भी दीप धीमा हुआ, यही उसके २४ ताथेद्वयों ने उसे पुनः प्रदीप्त किया।

अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के काल में भारत में भ्रमण-सम्प्रदाय से सम्बन्धित ७ घम थे, उनमें से एक बौद्धों को छोड़कर गेन सभी विग्रह हो गये और बौद्धों ने उनको आत्मज्ञान कर लिया। रही बौद्ध घम की बात—उसे भी भारत भूमि छोड़ना पड़ा और विदेशों में जाकर दश-काय के अनुरूप अपने में परिवर्तन करना पड़ा। पर, जैन धर्म ही एक ऐसा

अनेक धम रहा, जो समय के सैकड़ों उतार चढ़ाव को स्वरूप भी इसी भूमि में कलता चला रहा। उसकी इस स्थिरता का कारण निश्चय ही उसका साहित्य, उसकी विचारधारा, उसकी कमठता और उसका दशन है।

अतः यदि कोई व्यक्ति समुच्च भारत के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करना चाहे तो उसके लिए जैन धर्म और साहित्य का अध्ययन अनिवार्य होगा।

पर, एक तो अपनी विद्याभ्यास के कारण और दूसरे प्राचीन ग्रन्थ सम्बन्ध तथा प्राकृत में होने के कारण, साधारण व्यक्ति के लिए उसमें परिचय प्राप्त करना थोड़ा कठिन कार्य है। अब आज हमें ऐसी सुलभ और सरल प्रामाणिक पुस्तकों की आवश्यकता है जिसके द्वारा जन के मूल मूल्य जन-साधारण तक पहुँच सकें।

मरे पुत्र मित्र बन्धास जी भी कीर्तिविजय गंगवर जी मन्त्रालय की यह प्रति वस्तुतः इसी लक्ष्य से लिखी गयी है। उनमें जहाँ एक ओर शास्त्र के अभ्यास के पक्षस्वरूप सिद्धता है, वहीं साधु होने के पक्षस्वरूप परम्परा ज्ञान भी है। अतः पुस्तक अति सज्जित होने हुए भी, जहाँ तक जैन धर्म अभ्यास सिद्धान्त का प्रश्न है, अपने छोटे-से-छोटे, विवरण तक में पूर्ण प्रामाणिक है। उन्हें पत्र समस्त कर पाठ्यक कह सकता है कि, अनुकूल बात ऐसी है और उसके बदले पर कोई भी विद्वान् उत्पत्ती नहीं उठा सकता।

पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हो रही है यह हिन्दी का सौभाग्य है। हिन्दी में श्रेयताम्र-साहित्य नाल्प्य है और जा है भी, उल्लेख परित्यक्त अतः कम लोगों को है। प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही इस कमी को दूर करेगी और लोगों को जैन-दान समझने में सहायक होगी।

दरभरीवाड़ी, चिचोली, मलाह,

अगस्त १९४१।

संयुक्त १३, सं० २०१६ वि०

—प्रानचन्द  
विश्वविनोद

## महा प्रमाणिक नवकार-मंत्र

नमो अरिहताय  
 नमो मित्राय  
 नमो आयरियाण  
 नमो उष-मायाण  
 नमो लोण सय्य साट्टण  
 ऐसो पच नमुत्तारो,  
 सय्य पाव-पणासणो ।  
 मगलाण च सध्वेसि,  
 पढम हयइ मगल ॥

ऊपर लिख अनुसार नवकार-मंत्र के नव पद हैं, यह नवकार-मंत्र बौद्ध धर्म का मार-रूप है। यह मंत्र अविष्य प्रमादशाला है। इसके प्रभाव में दुष्ट और दानव भी आकर्षित होते हैं। मंत्र मनारथ पलन (पूर्ण होते) हैं। गिन और विपदाएँ दूर-मुदूर भाग जाती हैं। उपसर्गों का नाश होता है। यह धिग-मधिरल, क-पट्ट तथा कामधनु से भी अधिक इन्द्रियों को पूर्ण करता है। इस मन्त्रमंत्र के ध्यान से श्लेष कर्मों का नाश होता है। सब प्रकार के पाप का नाश होता है। हृत् स्लोक और परलोक में सुख-आमारी और अथर्व अदि सिद्धि मिलती है। निकाचित और निविद्ध कर्मों की निर्मला होती है। जन्म-जन्म के पाप उल जाते हैं। जन्म-मरण की बेड़ी कट जाती है। दुर्गति से घोर दुःखा से आत्मा बच जाती है। आत्मा कम रहित होकर शुद्ध तथा निमल बनती है। प्रातःकाल के स्मरण से सारा दिवस मंगलय मानता है। जनमन ही सुनाया जाय ता जन्म मफल

होना है। मरने समय स्मरण करने पर मद्गति प्राप्त होती है। इसके माहात्म्य का जितना वर्णन किया जाय योड़ा है। नरकार मंत्र के एक एक अक्षर के जाप ॥ भी असाध्य बर्षों के धीरे बर्षों का नाश होगा है। मन, वचन और काया में एकाग्रतापूर्वक इस मंत्र का खूब जाप करो इससे जाप में सबलान बना तमय बनो। निरगर हृदी की रट करो। धनने फिरते मोन बेगन हृदी का स्मरण करो। पत्रकी आकाश न रमा

आत्मिक गुणों की पराकाष्ठा पर पहुँच हुए सान्निध्य सिद्ध तथा साधक गुण पुण्यों की इसमें स्तुति है जिसमें गुण मात्र की पूजा ही समायी हुई है, जो व्यक्ति पुरुष की सकीर्णता में दूर है तथा महामागर के समान प्रियाय है। आत्मा के उत्तरात्तर विकास करने के समार में जो ऊँच पद है—उन पदों का ही इसमें प्रतिपादन है। इसमें यह महामन्त्र सबक सिद्ध समान रूप से श्रेयस्कर और कल्याणकार है।





## नमो जिणाण आर्हत धर्म प्रकाश जैन धर्म

विश्व के धर्मों में जैन धर्म का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैन-धर्म अनादि कालीन है। यह बात हम 'जैन' शब्द से ही समझ सकते हैं। जैसे कि, 'जिन' अर्थात् 'समस्तपारोक्षशून्यवर्तीति जिन' राम-द्रोणादि अंतरंग गुरुओं पर मिलने विजय प्राप्त की है अर्थात् जिन आत्मा ने उन्हें जड़मूल में नष्ट कर डाले हैं, यही आत्मा 'जिन' कहलाता है। इससे यह निश्चय हुआ कि बीतराग, तपस, सत्य-क्रियमान परमात्मा जिन कहलाते हैं। उनके द्वारा प्ररूपित उपदिष्ट धर्म ही जैन धर्म कहलाता है। और, इसीलिए उनका अनुयायी वर्ग 'जैन' रूप से पहचाना जाता है।

'जिन' शब्द व्यक्तिशब्द नहीं, परन्तु जातिशब्द है। जातिशब्द शब्द अनादि कालीन होते हैं। जब 'जिन' शब्द अनादि कालीन है तो जिन प्ररूपित धर्म भी अनादि कालीन है यह बात स्वपदिष्ट है। जिस प्रकार इसा महादेव ने इसाई धर्म शुरू किया, गौतम बुद्ध के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रारम्भ हुआ, इसी प्रकार इतर धर्मों की भी किसी निगिष्ठ व्यक्तियों के द्वारा ही उत्पत्ति हुई है। परन्तु, जैन धर्म को किसी एक व्यक्ति ने शुरू नहीं किया। यदि उठे किसी एक व्यक्ति ने शुरू किया होता तो वह बौद्ध धर्म की तरह महावीर धर्म, जयधर्म धर्म इत्यादि सशस्त्र द्वारा पहचाना जाता परन्तु यह महावीर धर्म या जयधर्म धर्म आदि शब्दों में न पहचाना जाकर जैन धर्म से ही पहचाना जाता है इससे हम यह समझ सकते हैं कि, जैन धर्म अनादि है।

जैन धर्मानुसार काल के दो विभाग होते हैं—(१) उत्सर्पिणी और (२) अवसर्पिणी । उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में २४ २४ तीर्थंकर होते हैं । तीर्थंकर 'जिन', 'अरिहत' 'जिनंदर' इत्यादि नामों से पहचाने जाते हैं । भूतकाल में इस प्रकार की अनंत चौबीसियाँ हो गई हैं और भविष्य में भी इस प्रकार की अनंत चौबीसियाँ होंगी । तीर्थंकर देव की आत्माएँ जन्म काल से ही विशिष्ट पानी और महासीमाव्यापी होती हैं ।

इन तीर्थंकर देवों की आत्माएँ राज्यपाल का त्याग कर वैभवाश्रम को छोड़, शयन दीक्षा ( सत्यास ) अंगीकार करती हैं । दीक्षा लेने के बाद यहाँ तक पुनर्जन्म कठिन कर्मों का शयन करने के लिए ३ धार तपश्चर्या करते हैं । इस काल में ये कठिन अभिप्राद और विविध धार प्रतिष्ठाएँ धारण करते हैं । अपने उत्सर्पण-काल में वे भयंकर उपमर्गों को अनुभव करना पुरुष सहन करते हैं । तदर्थ आत्म ध्यान में लीन रहते हैं । एसी उत्सर्पण तपश्चर्या द्वारा जन्म जन्मन्तर के पापों का नाश कर जाते हैं । चिकन कर्मों को भस्मीभूत कर, शत्रु मित्र पर समभाव रखते हुए, धीतराग दया को प्राप्त कर वेवलज्ञान और वेवलदर्शन को प्राप्त करते हैं । यन्त्रज्ञान संपूर्ण ज्ञान है । उन ज्ञान और दर्शन द्वारा तीनों लोक के—स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक के—तीनों काल के—भूत, भविष्य और वर्तमान काल के—समस्त भावों को अविलिखित विश्व के पदार्थों को तथा क्षण क्षण में परिवर्तित दुनिया को जानते और देखते हैं ।

इन संपूर्ण ज्ञानी परमात्मा के ज्ञान से कोई वस्तु अज्ञात नहीं होती । कौन कहाँ से आया ? कहाँ जायगा ? अनन्तकाल के पहले यह किन-किन अवस्थाओं का उपभोग कर रहा था ? कब उसका उद्धार होगा ? इत्यादि वस्तुएँ वे इत्थामल्लकन् दग्धते और जानते हैं ।

परमात्मा विदेहमुक्त और जीवन्मुक्त इस प्रकार दो तरह के होते हैं । जिसने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन आत्मगुण

क घातक चार पानीहमों का जड़मूल से नाग कर दादा है, ऐसे परमात्मा जीवन्मुक्त चरम शरीरी होते हैं। इस जम के बाद में ये जम धारण नहीं करते। और, जिनके चार घाती और चार अशरी ( नाम-कम, गोत्र-कम, आयुष्य-कम और पञ्चोप-कम ) कम ये आठों कम जड़मूल में नष्ट हो गए हैं, वे विन्दु मुक्त परमात्मा अवात् मिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। श्रीधन मुक्त-दहधारी ( जिन-दहधारी ) परमात्मा अमिन्न विन्दु क संगूथ हरूप को जगत्-जगत् क कल्याण के लिए समस्त संसार को कल्याण का सदा रास्ता बनाने हैं। अन्तिम, मय अन्तेय, नमोचय और अन्तिमद का पाठ लिखाने हैं। अन्ध, व्याधि और उपाधि-रूप विधिप साध से सदा जीवों को अमृत-पाना क प्रसाद द्वारा अपूर्ण बोधगठ प्रदान करते हैं। विन्दुसंधि का सदा संग्रह होते हैं। सच्च मुक्त का भान कराते हैं। अमन रूपी अंधकार का दूर-दूर दूर दूर दूर और इन सबक बाद अन्त में मुक्तिपुरी क शाश्वत मुक्तों का लिखने हैं।

## आश्चर्यजनक विशालता

जैन धर्म के सिद्धान्त यौतराग और सर्वज्ञ द्वारा प्रस्थित है, इसलिए वे (असंयुक्त) विशाल तथा सत्यमूलक हैं और इसी से उनकी विशेष भारिता सिद्ध होती है। यह धर्म छोटे-छोटे प्राणी की भी रक्षा करने का आदेश देता है।

जैन सिद्धान्त का कथन है कि, जगत् के सभी प्राणी (जीव) जीवित रहने की इच्छा रखते हैं। किसी को मृत्यु हट नहीं दे। सबको सुख दृष्ट है और दुःख अनिष्ट है। जिस प्रकार अरुण कर्दिर सिद्धि में गगन रहने वाला इंद्र भी जीवित रहने की आशा रखता है, उसी प्रकार पृथ्वी में रहने वाला कीट पक्षि में रहने की जीने की इच्छा रखता है। दोनों मनुष्य से समान रूप से डरते हैं। इसलिए, मानव मांस को हरेक प्राणी की रक्षा करनी चाहिए—चाहे वह पंचेन्द्रिय हो, दो इंद्रियों वाला हो, तीन इंद्रियोंवाला हो, चार इंद्रियोंवाला हो या पंचेन्द्रिय हो—पशु हो या मनुष्य हो। एकेंद्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक समस्त प्राणियों की रक्षा करो। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जान है। जैसी हमारी आत्मा है, वैसी ही सबकी है। जीव का धर्म सर्वोच्च विकासशील है। कीड़ की आत्मा और कुत्तर की आत्मा में विस्तृत अंतर नहीं है। कुत्तर की आत्मा ही कमजोर के कारण किसी समय कीड़ा रूप हो सकता है, पृथ्वीकामिक जीव, अपमृत्तिक हो सकती है अथवा नरक आदि गतियों का अनुमन कर सकती है। इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि, कमजोर के कारण वही आत्मा एकेंद्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव योग धारण करती है।

सबकी आत्मा समान है। इसीलिए, जिस प्रकार "मैं दुःख होता है,

उसी प्रकार सबको दुःख होता है। बिना प्रकार हम सुख की कामना करते हैं, उसी प्रकार सब प्राणी सुख की आकांक्षा रखते हैं। इसलिए, सबकी एक समान रक्षा करनी चाहिए। इसमें भेद नहीं करना चाहिए कि, जो हम बापा पहुँचाते उसे मारने में बाध नहीं समझा जाये—इस प्रकार का व्यवहार भी हिंसक-व्यवहार है। यह सर्वत्र परमात्मा का शासन है। उल्टी दिशा में दृष्टि यह दे कि, यदि कोई भी जीव आत्मा हमारा बुरा करे, हमें दुःख / तर भी उसकी रक्षा करो। फिर चाहे वह पशु हो या मनुष्य हो।

जैन धर्म की किननी धियाणता ? वैसा उध्या ? बिनायर देवों की वैसी अग्रिम लोक-कल्याण शिष्यक मावता—गृह्माति शुद्ध प्राणियों के लिए भी रक्षा का लक्ष्य—बुरा करने तथा बुरा गाचनेवाले की भी रक्षा, तथा मनुष्य हा यहा एक भावना उसमें समापी हुई है। प्राणी चाहे बिग दग का हा, चाहे बिग यानि का हो, चाहे अहाँ रहता हो, सुखतिपूर्ण हो, पर सबकी अपराधियों में भी निरुद्ध आगामी प्राणी की भी रक्षा करो, क्युं यही एक उपाय सरल परमात्मा जिना पर देव का रक्षा है और है।

हमार पाँव में एक काँटा चुभता है, तो हम हाव सोचा मत्ता देने हैं। बिच्छाने हैं तो फिर दूसरे प्राणियों पर अपमानार बने किया जाये ? क्या उन्हें दुःख नहीं होगा ? बिग प्रकार हमें दुःख होता है, उसी तरह सबको दुःख होता है। सबमें अधिक बहुल्यवान प्राण-जात है। करोड़ों होने सब करने पर भी गया हुआ जीवा नहीं मिल सकता।

मनुष्य दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक समस्तार और समथ है। इसीलिए, उसका यह प्रथम कर्तव्य है कि, यह निर्दल की रक्षा करे। अपने अपराधी भौतिक सुख के लिए दूसरे प्राणियों को सुख से वंचित करना नहीं चाहता।

जो प्राणी बग़ार मूले हैं, प्राणी द्वारा अपने सुख-दुःख को प्रकट कर सकने ऐसे निर्दल प्राणियों का अपने स्वाध या विद्या प्रसारण में बाध कराना भयकर अन्याय है। इसमें मानवता नहीं, बल्कि दण्ड है।

इस प्रकार जिनेन्द्र देवों ने दया का ओष्ठ से ओष्ठनम स्वरूप बताया है ।

शूठ का त्याग करो । मित्र, प्रिय और सत्य ब्रोज्ये ॥ शूठ बोज्ये से मुँह अपवित्र होता है ॥ मनुष्य अपना विनाश यो देता है । शूठ भी हिंसा की तरह एक महापाप है । चोरी का त्याग करो किसी को धोखा मत दो, जेबें बनरना, ताँजे तोड़ना या किसी का धन माल इज्जत कर जाना ये सब महान् पाप हैं ।

मिथ्या दस्तावेज, झूठी सगद्दी, पाप का उपदेग इन सबका त्याग करो । ब्रह्मचर्य का पालन करो, ब्रह्मचर्य आत्मज्ञान पैदा करने का अमोघ साधन है । देव तथा दानव भी शुद्ध ब्रह्मचारी के दास बनते हैं । उसकी वचन की कीमत होती है । सभार में परम पुरुष और उत्तम पुरुष के रूप में उसकी गणना होती है ।

अधिक संभ्रम मत करो, आसक्तताओं को कम करो, किसी भी वस्तु पर ममता भाव, मूछला, मत रखो—‘उतापी नर सदा मुनी’ ! हमलिय जितनी आसक्तताएँ कम होंगी उतनी ही मुक्ति-प्राप्ति होगी । आधुनि युग में संपत्ति कौन-कौन से विषयों काय कर रही है, उसमें हम आसक्ति नहीं हैं । इसीलिए जैन धर्म का परिग्रह परिमाणमत्त क्षेत्र एक रेखा ११ पर सांकेतिक उपकारक है ।

रात्रि मोक्ष का त्याग करो । रात्रि मोक्षन से अनेक जीवों की हिंसा होती है । बुद्धि लुप्त होती है और दुसरे जन्म में दुर्गति में जाना पड़ता है । चल्ता पड़े तो तीन भूमि की ओर गयी मौलिक तैय्य मालकर चलें पानी इत्यादि अनन्य पित्रो । क्रोध, मात, माया, रोम, राग, द्वेष आये सब—भयकर शत्रु हैं । उन्हें कम करो ।



न तो किसीकी निंदा करो और न किसी की हत्या । आत्मा पचानो । यथ क त्वाद्-वृत्तमिदं म मन पदो । परम्पर प्रेमभाव रख






## जैन साधु

जैन-साधु वास्तव्य स्थिति इजाजत-प्राप्तों की दीवत को, मकान, साग, धमन आदि विपुल सामग्री तथा माता पिता, भाइ बहन, पुत्र परिवार आदि स्वजा सावधियों को छोड़कर ठाका मोह दूर कर साधु-गुरु गुण योग विचारों में जीवन बिताते। वे मुँह मोड़कर मुक्तिमार्ग की साधना के लिए त्रिचर-द्वय द्वारा प्ररूपित मयम के पवित्र भाग पर प्रयोग करती के लिए तैयार होते हैं और स्वामी गुरुओं के पात दीक्षा (गत्याग) लेते हैं। दीक्षा होते समय उन्हें पाँच महार प्रजापति (महाप्रज) लक्ष्मी पड़ती हैं।

१ आजीवन लोभ या बड़ बर अवर किसी भी चीज की हिता मा, बान या काया से नहीं करना, न करना और न कराने का अनुमोदन करना। इस प्रकार समस्त जीवों की सुखानिगुण रूप में रक्षा करना उनका प्रथम व्रत है। कहिए,  जीवों की रक्षा के लिए ही ये संसार  त्याग कर साधु गत्यागी बाने हैं। ग्रहस्थाभय में एसी सुख दया का पाप्य नहीं किया जा सकता। जैन-साधु चाहे जैसा अरसर आवे अग्नि का स्पर्श तक नहीं करते। कड़कड़ाती गड में भी अग्नि की धूनी नहीं त्यागते, घोर गर्मी में पग का उपयोग भी नहीं करते। रात्रि के समय दीपक या बिजली की पत्ती का भी उपयोग नहीं करते।

२ सत्र के लिए त्रिविध त्रिविध शूल का त्याग।

३ चोरी का वर्णना त्याग। छोटे-छोटी वस्तु का भी मन पचा काया से उनक मालिक को पूछे बिना न उपयोग करने हैं, न कराते हैं और  करनेवाले का अनुमोदन करते हैं।

४ ब्रह्मचर्य (अव्रह्म का त्याग) जैन साधु दीक्षा अंगीकार करते हैं—  
५ समय में यात्राजीन—जीवनपथन ब्रह्मचर्य का पाप्य करने हैं। स्त्री का

स्पष्ट तक नहीं करते, यदि भूल से कदाचित् अङ्गुली का क बाल का भी रंग हो जाय, तो उन्हें प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। त्रिम मकान में स्त्री रहती हो, यहाँ से निराग भी नहीं करते। रात्रि के समय उनके निराग स्थान में स्त्रियों के लिए जाने आने का ग्वास प्रतिबंध होता है। व वैश्विक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

जैर सातु गाड़ी, घोड़ा, साइकिल, मोटर, रिमान या किसी भी वाहन का उपयोग नहीं करते। ग्ग-ग्रेडोवर में वे पद रिग्न कर के जाते हैं। ओक कर्णों का सामना कर गाँव गाँव और नगर-नगर में समस्त प्रजा को बिना किसी भेद भाव के आमहित का उपन्य रहे हैं। किसी भी प्रकार के स्वाय के बिना जाता का कल्याण का सदा रहस्य पनपते हैं।

छाता शूता-न्यहाऊँ हत्यादि का उपयोग वे नहीं करते तथा उन्हें किसी वस्तु का व्यसन भी नहीं होता। मन्त्र ज्ञान ज्ञान, साम्बर्ननन और पठन पाठन में ही बाल व्यनीत करने हैं।

वे भोजन भी स्वय नहीं पकाते। मनुकी वृत्ति स प्रत्येक घर मिठा गोचरी लेने जाते हैं। निर्णय आहार पानी ग्रहण करने हैं। गृहस्थ लोग अपने भेय क लिए उन्हें सवदा समपग करते हैं। परन्तु, य त्यागी साधु उन्हें जितनी आप-यकता हो उतनी ही वस्तु ग्रहण करते हैं। रात्रि को वे अपने पास कोई भी स्थान-वीने की वस्तु नहीं रखते। वे अपने सिर क बाल भी प्रसन्नतापूर्ण हाथ स खिच डालते हैं। शरीर के ऊपर के ममन्त्र का दूर करन के लिए वे ऐसे कठिन परिपद् भी आनन् से साम्न करते हैं।

गुणोन्म के बाद ने घड़ी (याने ४८ मिनिट) क बाल ही यदि कोई वस्तु मुँह में डालनी हो तो डालने ह। और, गुणाल के बाद आहार पानी का बिन्दु उपयोग नहीं करते। बाद जैसी गर्मी हो व रात्रि के समय ग्वास लगने पर भी पानी नहीं पीते। ऐसी कनि प्रणिग्गों का पालन जैन साधु सार्प करते हैं।

गेन-साधुओं का जीवा बहुत ऊँचा होता है। जगत् के सम्पूर्ण के लिए ही उसका सारा जीवन होता है। गेन-साधु सब प्राणियों की रक्षा के लिए ही ऐसे ठोकर प्रतिपाद प्रवृत्ति करते हैं। ऐसे महान् त्यागी सत साधु आज भी मैत्रियों की सख्या में इस पृथ्वी पर पैर प्रयास कर रहे हैं और संसार पर महान् ठोकार कर रहे हैं। आज जगत् में जो कुछ शान्ति सुख और आपसी दृष्टिगोचर होती है, उसका सारा भेद उन त्यागी साधुओं और सपत्नी पुत्रात्मा में ही है।





शुद्ध, पक्के, फूल, फल इत्यादि कसे सम्भव हो सकते हैं। शृङ्ग स्त्री काय का किन्ती कारण के बिना सम्भव नहीं हो सकता, इसलिए हम मानते हैं कि उसका कारण मूल हाना आवश्यक है।

इस प्रकार हम काय से उसके कारण को समझ सकते हैं। इसी तरह आत्मा का काय भी जीवित मनुष्य में दृष्टिगोचर होता है। जागृत मनुष्य जिस प्रकार हिलता हलता है, निशा करता है, चेष्टा करना है, विचार करता है, भूत मणिष सम्बन्ध उदा पोह करता है, भूत मणिष सम्बन्धी विचार और कल्पनाएँ करता है ये सब क्रियाएँ मृतक व्यक्ति में नहीं होतीं। एक मिनट पहले जिस जीवित मनुष्य में हिलना चलना आदि सब क्रियाएँ दृष्टिगोचर होती थीं, मरने के बाद तुरन्त एक क्षण में मृतक व्यक्ति निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रत्यक्ष उद्घाटन द्वारा हम समझ सकते हैं कि, जीवित मनुष्य में काय आत्मा का है और मृतक में स आत्मा खाली गयी, इसलिए सब उसे कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार आत्मा का काय हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इस दृष्टांत द्वारा हम आत्मा को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

शरीर आत्मा का घर है। घर में रहनेवाला घर से भिन्न होता है। घर या प्रासाद गिर जाये अथवा किराये के मकान की अवधि पूरी होने पर उस मकान में रहनेवाला घर छोड़ या उसे ताली करके दूसरी जगह रहने लगता है, उसी प्रकार इस शरीर में आत्मा के रहने की अवधि समाप्त होने पर आत्मा कम के अनुसार दूसरे स्थान पर बँधे हुए आयुष्य के अनुसार—जाता है। दूसरे जन्म में जाने पर वहाँ दूसरा शरीर धारण करता है। वहाँ पर भी फिर अवधि पूरी होने पर तीसरे जन्म में आत्मा जाती है। वहाँ तीसरा शरीर धारण करती है। इस प्रकार अनादि काल से क्रमानुसार जन्म मृत्यु की परम्परा चलती रहती है।

जिस प्रकार तलवार से ग्यान भिन्न होती है, उसी तरह देह से भी आत्मा भिन्न है। जिस प्रकार दूध में घी मिश्रित होने पर भी घी त्रिवाह



लकड़ा में अंग और दूध में घी दिखाइ न देने पर भी उनके अस्तित्व को स्वीकार करता पड़ता है, उसी प्रकार शरीर में आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है। जब आत्मा अपने स्वरूप को पहचान लेती है तब वह धमाचरण से लीन होती है और जब कर्मों का भेदन कर डालती है, तब नमः-मृत्युरहित बनती है। यह अमर आत्मा मोक्ष के स्थान में गारुड और सतत अगड सुखोपभोग करनेवाली अनन्त सुखी जाती है।

इस प्रकार आत्मा अनेक प्रमाणों से भी सिद्ध है। आत्मा स्वयं घेय होने से भी सिद्ध पस्तु है, इस लोक को छोड़कर परलोक में जानेवाली है। इस शरीर में भी वह परलोक से आयी है और आयुष्य कर्म समाप्त होने के बाद वह शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जानेवाली है, यह बात भी सुनिश्चित है। आत्मा अमर, अगड और अविनाशी है, फिर भी कर्म के अधीन होकर उसे जन्म मरण घारण करने पड़ते हैं, ससार में परिभ्रमण करना पड़ता है, दुःखी होना पड़ता है, अतः कर्मों का नाश होने पर वह अपने मूल रूप में आकर पूण बनती है। परमात्मा-स्वरूप बनती है। वेत्ती पूण पनी हुई, आत्मा को परमात्मा कहते हैं।

## कर्म

यदि सगति किन्ती विचित्रताओं से परिपूर्य दिखाई देता है। इन सब विचित्रताओं का मूल कारण 'कर्म' है। यदि कर्म जैसी वस्तु न होती, तो यह प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली विचित्रता भी न होती। एक राजा, एक गरीब, एक सुनी, एक दुःखी, एक रोगी, एक निरोगी, एक बाला, एक गोरा, एक मूढ़, एक पतंग, एक सठ, एक नीकर, एक मूल, एक बुद्धिमान, नीचा, कँटा, छला, गधा, अंधा, बहग, मुदर और कुरूप इन सब विचित्रताओं के पाठ कुठ कारण है। उन विचित्रताओं के पीछे 'कर्म' नामक एक मजसला काम कर रही है और उसी के फलस्वरूप जन्म इतनी अधिक विचित्रताओं से परिपूर्य दिखाई देता है।

कर्म के फलस्वरूप जन्म में निरिद्वन्द्व रूप से मर हुए हैं। यद्यपि वे जन्म हैं फिर भी हम उनके साथ सन्देह जान सकते हैं।

एक समय लोग ऐसा कहते थे कि, हिलर किमा भी समय पराक्रान्त नहीं हो सकता। उसी विषय के उनके चारों ओर बज रहे थे, फिर भी आज उसका नामो निशान तक नहीं रहा और जिसका 'ब्राह्मण' मुनने के लिए एक समय हजारों-लाखों आदमी दौड़ पड़ते थे, आज उनकी यादों मुनने के लिए कोई तैयार नहीं। बड़े-बड़े राजाओं के सिंहासन हिल उठे, अमीरानों में चूर न आने किन्तु रुस्तम आनन्द-फानन में अमीनदाशदा गये। इन सबका मुख्य कारण कौन? कर्म।

एक ही माता के उदर में से एक साथ पैदा हुए सुगन्ध म भी एक मूल और एक बुद्धिमान, एक धनिक और एक गरीब, एक बाला और एक गोरा पैदा होता है इसका क्या कारण? गर्भ में तो किसी न किसी प्रकार के ऐसे कर्म नहीं किये थे, फिर भी इतना अधिक विचित्रता क्यों?



इससे भी हम समझ सकते हैं कि, एक साथ पैदा होने पर भी, पूरे भव के कर्म के परिणाम स्वरूप इस प्रकार की अद्भुत भिन्नता दिखायी देती है।

जब आत्मा किसी अवस्था से आयी है, तब वह भी निश्चिन्त है कि, अपने कर्मानुसार वह कहीं अवश्य जानेवाली है।

आत्मा अमर है, अखण्ड है, अस्निग्ध है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र जीने होने पर नवीन वस्त्र पहनता है और पुराने वस्त्रों को डतारकर फेंक देता है, उसी प्रकार वह आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करती है। शरीर उड़ जाने पर भी यह आत्मा वहाँ की वही रहती है। वह आत्मा कर्मानुसार विविध गतियों में परिभ्रमण करती है और अनेक प्रकार की यातनाओं पीड़ाओं की भोग बनती है। पर, इतना होते हुए भी मनुष्य जैवों के लिए भी दुःख मनुष्य जन्म को प्राप्त करके भी अनेक प्रकार के कुर्म करता है। हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, अनीति, घुराह, दुष्प्रा और निंदा, विषया द्वारा अशुभ कर्मों को संचित करता है। ये कर्म आत्मा के साथ धीरे-धीरे तरह-एककार हो जाते हैं। परिणामस्वरूप आत्मा को अनेक जन्म-जन्मांतरों में अस्वस्थ दुःख सहन करने पड़ते हैं।

मनुष्य यत्नमान काल का विचार करता है, परंतु भविष्य का विचार नहीं करता। सकुचिन्त दृष्टि "वर्त्ति" को वह तब नहीं कि, कर्मों पाँच पचास पाँच की छोटी-सी जिंदगी के लिए, मान-सम्मान के लिए और बड़ा कइलाने के लिए वह धर्म कर्म के साथ ही साथ आत्मा तक को भूल जाता है। परिणाम स्वरूप उसी आत्मा को उसके कर्मों के कड़ए पाँच चगन पड़ते हैं। भविष्यकाल अनन्त है। एक छोटे से जीवन में क्षणिक तुच्छ सुखों के लिए प्राणी असंख्यकालीन दुःखों की परम्परा अपने ऊपर लाद देता है। कितनी अधिक मूर्खता !

मनुष्य अपनी बुद्धि के क्षमण्ट में मरा जाता है। गर्जित होकर जो

मा में आता, वह बहता रहता है। इस जीवन में तो एक एक मिनट का यह विचार करता है, परन्तु एक मिनट के लिए भी यह नहीं विचारता कि इस जीवन के 'ऑपुट्टराश' होने के बाद क्या होगा। शरीर में स आत्मा के निकल जाने के बाद क्या दया होगी। कहाँ जायेगा। इसका होगा तो भी विचार उसके मन में नहीं उठता। रात्रि, दिन और हुक्मन ये सब सब इस जीवन तक सीमित हैं। नहीं सोचने योग्य अभिप्राय पण्यों जैसे कि मद्य मांस आदि वस्तुओं से उठा। जिस शरीर का पाल पाल कर हटा-कटा बनाया है, वह शरीर अन्त में एक दिन रात्रि हानिवाली है, इस बात को वह भूल जाता है।

अगनी व्यक्ति भोग-विभोग में मग्न होकर पशु की तरह जीवन व्यतीत करता है और न कबहुत इस अनसूख मानव रह की निकम्मा बना जाता है वह बरन् काफ़ी कोफ़ी क्यों के लिए अत्मा को कष्टों में डालता है।

जिस स्थान से रत्न हकड़े करने चाहिये, वहाँ से वह कचड़ हकड़े करता है। कितनी अधिक अज्ञानता।

मनुष्य को अग्नि हा कपड़े बाढ़ स भी मज या गढ़ हों तो अच्छे नहीं लगते, बूढ़-करकट स मरा हुआ घर भी उसे श्रेष्ठ नहीं लगता। तो फिर उसे आत्मा की मलिनता पसन्द पड़ना अज्ञानता नहीं तो और क्या है।

मनुष्य मकान जा बार बार शाहू से शाहूकर साफ रखता है। अग्नि शरीर पर रहे हुए मैल को दूर करने के लिए गरम पानी और साबुन के द्वारा खूब रगड़ रगड़कर स्नान करता है और शरीर को स्वच्छ रखता है। कपड़ों को प्रतिदिन धोता और बदलता है। पर, वह इस ओर किंचित् ध्यान नहीं देता कि उससे लग्न निकटतम आत्मा मलिन हो रहा है, और उसे शुद्ध करने के लिए वह किंचित् प्रयास नहीं करता। यही सबसे बड़ी अज्ञानता है। शरीर, धन, मान, मित्र और स्वजन परिवार आदि सब शून्य और निम्न हैं। उनमें मोड़ में मनुष्य ध्यान बसाद करता है और अमर आत्मा का भूल जाता है।

तथ्य तो यह है कि, आत्मा है तो सब है। जब तक आत्मा रहती है तब तक सब उसका इज्जत करते हैं, सम्मान करते हैं और सत्कार करते हैं। मुरदे की क्या कीमत है ? जो आजीवन स्नेह सत्कार करते हैं वे ही मृत्यु के बाद, हमारे शरीर को अपने ही हाथों से जलाकर भस्म कर डालते हैं।

आत्मा की उपस्थिति में ही बाग बगीचे, बगले, धन मार्ग आदि सब वस्तुएँ काम आती हैं। पर, जब आत्मा शरीर से निकल जाती है, परलोक में जाती है, तब बड़े बड़े राजमहल, ऐश्वर्य, धन की राशि, स्वजन स्नेही और प्यारे प्रियतम सब यहाँ पर ही रह जाते हैं और अपनी आत्मा सबसे मुँह मोड़कर निकलती है और अपने पुनश्चित् कर्म भोगती हैं। उस समय कोई दयजन उसका सहायक नहीं हो सकता।

आप पढ़ेंगे कर्म बड़ है, फिर यह चेतन आत्मा को कैसे प्रभावित करता है। इसका उत्तर है कि, जैसे मग्न बड़ द्रव्य होने पर भी आत्मा को बेहोश बनाता है, उसी प्रकार कम बड़ होने पर भी आत्मा पर अपना प्रभाव डालकर फल देता है। किये हुए कर्मों से यदि पुण्य प्राप्त करना हो, शाश्वत शान्ति प्राप्त करनी हो, पूरा सुखी बनना हो और सदैव के लिए अमरत्व आनन्द में मग्न होना हो, तो केवली प्ररूपित मार्ग पर चलना चाहिए। सच्चा ज्ञान सीखना चाहिए सच्ची मान्यता पर अटल होना चाहिए और सच्ची जिया करनी चाहिए। सब जीवों के प्रति मैत्री भावना का विकास कर अहिंसक वृत्ति रख कर सदाचार, न्याय, नीति और सत्य का पालन करना चाहिए, तथा तपश्चर्याएँ करते रहना चाहिए। इन्द्रियों के गुलाम न बनकर उनका दमन करते रहना चाहिए। आत्मा को पहचान कर आत्म विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे आत्मा क्रमशः कर्मों से छूटता जाता है और अंत में कम रहित होकर शुक्ति धाम (मोक्ष में) पहुँच जाता है और यहाँ पर शाश्वत सुख का मोक्ष प्राप्त होता है।

जिस प्रकार अनादि काल से खान में रखा हुआ सोना मिट्टी से मिला हुआ हाता है, उसी प्रकार आत्मा भी अनादि काल से कम द्वारा लित है।

जिस प्रकार सोना ग्लान में से बाहर निकालने के बाद विभिन्न प्रयोगों द्वारा शुद्ध और निमल बनता है उसी प्रकार आत्मा भी तप, सयम और दया, दान आदि साधनों द्वारा कम से विमुक्त होकर पूर्ण शुद्ध होता है। जो आत्मा कम से विमुक्त (रहित) बनती है, वह आत्मा परमात्मा ज्ञा को प्राप्त करती है।

जीवामाओं की संख्या अनंतानंत है। उनकी आत्मा भिन्न भिन्न हैं। यदि सबकी आत्मा एक ही होती, तो एक के मृत्यु से सब सुखी और एक के दुःख से सब दुःखी होकर पड़ते, परन्तु इसके विपरीत ही देखने में आता है। जो व्यक्ति शक्र खाता है, उसे ही शक्र मीठी लगती है अन्य को उसके स्वाद का भास नहीं होता। एक व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके साथ सब नहीं मर जाते। इससे स्पष्ट है कि, स्वभाव रूप से सब आत्माएँ समान होने पर भी व्यक्तिगत रूप से सब भिन्न-भिन्न हैं।

जो जो आत्माएँ कम से विमुक्त बनती हैं, व सभी परमात्मा बनती हैं।

शुद्ध बनी हुई आत्मा को पुनः कर्मों का लेप नहीं होता तथा उसे फिर से अवतार या जन्म लेना नहीं पड़ता। बीज के जल जाने के बाद जिस प्रकार अंकुर पैदा नहीं होते, उसी प्रकार कम रूपी बीज के सत्त्वा भस्मीभूत हो जाने पर जन्म मरण रूपी अंकुर पैदा नहीं होता। तापय यह है कि, उसे पुनः जन्म या अवतार लेना नहीं पड़ता, वह आत्मा अपने मूल रूप को प्राप्त कर के अजर अमर बन जाता है। ये परमात्मा जनी हुई आत्माएँ इस शरीर को छोड़कर एक समय—सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थान—में सान रज्जु उँच गंगा सिद्धशिला पर पहुँच जाती हैं, जहाँ पर कि अनन्त सिद्धात्माएँ निवास कर रही हैं। सिद्ध शिला पर पहुँची आत्माओं का न तो जन्म होता है और न मरण, न उन्हें कभी रोग होता है और न शोक न विषा

का भय होता है और न किसी प्रकार की लेश मात्र भी उपाधि होती है । सिद्धशिला स्थित समस्त आत्माएँ सदैव के लिए अन्त आनन्द सागर में निगमन रहती हैं ।

परमात्मा शब्द ही हम बात का सूचक है कि, जो आत्मा शुद्ध और निमल बनती है, वह परमात्मा कहलाती है । इसीलिए, एक ही परमात्मा है, यह बात भी असम्यक् है । यदि हमारी आत्मा का परमात्मा-पुर्ण और पूण जानी होना—असम्भन होता तो साधुओं के लिए घर छोड़कर उत्कृष्ट तपश्चर्या करने की आवश्यकता नहीं रहती । साधु स त कर्म मुक्ति के लिये से ही प्रत्येक उत्कृष्ट क्रिया तथा उत्कृष्ट तपश्चर्याएँ करते रहे हैं और करते हैं । किसी प्रयाजन के बिना कोई मूल मनुष्य भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता । इसलिए, बुद्धिमानों और तपस्वीसन्त पुरुष मोक्ष प्राप्ति के लिए जो धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, वे यथाय ह ।

परमश्रद्धासी आत्माच परमात्मा—यहाँ 'परम' शब्द 'आत्मा' का विशेषण है । जो आत्माएँ त्यागी संत होती हैं अर्थात् जिनके आचार विचार उत्तम होते हैं, वे ही आत्माएँ अथवा परमात्मा महात्मा रूप से पहचानी जाती हैं ।

और, जिनका आचरण निरुद्ध होता है, जो गगन राम करते हैं तथा जो निदयी और पापी हैं, उनकी गिनती अथवा आत्माओं में की जाती है । परमात्मा—अर्थात् धीतराग, सन्न, सनदर्शी और सनशक्तिमान, पुण्य सुनी, अम्बुज आनन्द के भोक्ता, अनन्तशुणी और सर्वोपरि पूर्ण शुद्ध आत्मा ।

## ईश्वर की उपासना

जैन ज्ञान पूरा आत्मिक दया है। जैन लोग जिस प्रकार ईश्वर की तपासना, सेवा, भक्ति करते हैं, वैसी तपासना शायद ही कोई करता होगा। ये परमात्मा का भक्ति में अपना तन, मन और धन सभी समर्पित कर देते हैं।

यह बात तो जैन मंदिरों को देखने मात्र से सहज ही स्पष्ट हो जा सकती है।

परमात्मा का सेवा से आत्मा परमात्मा बनती है। भ्रमर का ध्यान करते रहने से जैम कीन् भ्रमर बन जाता है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान से आत्मा परमात्मा बनता है। आत्मा स्तुतिक जैसी निमल है। जिस प्रकार स्त्री का रत्न का पास जिस रंग की वस्तु रखी जाता है, उसी रंग का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है—यन् वैसे रंग का मादम होता है—उसी प्रकार आत्मा जो जैन जैसे सदाग प्राप्त होते हैं, वैसी बढ़ जा जाता है। रंग द्वेष या मोह के निमित्त प्राप्त होने पर आत्मा रागी, द्वयी भयसा मोही बनती है तथा अच्छे संयोग प्राप्त होने पर उत्तम अच्छी मानाएँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये, सखारी आत्माओं के लिए अच्छे निमित्तों और अच्छे आचरणों की सप्रथम और क्षीप्रविशीघ्र आवश्यकता है। और, इसके लिए सर्वोच्च और सुन्दरतम निमित्त परमात्मा की प्रणमन से परिपूर्ण गतमुक्त मुद्रा और वीतरागता का प्रत्यक्ष अनुभव करानेवाली चित्ताकषक मनाहर मूर्तियाँ ह। इन वीतराग परमात्मा की मूर्ति के दर्शन, पूजन और सेवा भक्ति से आत्मा वीतराग दशा का अनुभव करती है।

परमात्मा का किसी वस्तु की ओरता नहीं होनी परन्तु सखर की मोह माया से मुक्त होने के लिए प्रवचन तन, मन और धन उनके चरण के

म समर्पित कर दते ह, और यह भावना भाते रहने हैं कि, “हे प्रभु ! इन गव उस्तुओं के मोह में आत्मा जम जमोतरों से पागल बनी हुई है, फिर भी किसी जम में उसे तृप्ति नहीं हुई । अब इन कुछ बड़ पदायों की मूछा, मोह, माया छोड़कर मैं आप जैसा वीतराग कब बनेगा ?”

वीतराग का ध्यान करने से आत्मा वीतराग बनती है । क्योंकि, प्रपञ्च आत्मा में वीतरागता का गुण कम से दया पड़ा हुआ है । वास्तव में आत्मा का स्वरूप और परमात्मा का स्वरूप एक ही है इसीलिए हम ‘सोइद सोइद’ का ज्ञापन करते हैं ।

“हे प्रभु ! तेरे स्वरूप और मेरे स्वरूप में लेशमान भी अन्तर नहीं है । मैं भी परमात्मा स्वरूप हूँ, परन्तु आप कम रहित होकर परमात्मपद को प्राप्त हुए जब कि मैं कमजोर होकर इस सत्तार में परिभ्रमण कर रहा हूँ ।”

इस प्रकार की त्रिविध भावनापूरक परमात्मा की भक्ति करने से आत्मा सरलता से कल्याण को प्राप्त कर सकती है । जिस प्रकार जिनेश्वर देव की मूर्ति आत्मा के उत्थान के लिए उत्तम आलम्बन है, उसी प्रकार धार्मिक पुस्तकें और त्यागी गुरुदेव आदि भी प्रशस्त अथावा श्रेष्ठ आलम्बन रूप हैं । इसलिए उनके सहवास में रहनेवाली आत्मा का परिधन होता है । जो आत्माएँ इस प्रकार आचरण करती हैं, वह समाग की ओर प्रयाण करती हैं, उन्हीं का निवास होता है और वे ही कर्मों का ध्वंस करने में समर्थ होती हैं ।

## ईश्वर का कर्तृत्व

अनेक व्यक्तियों की यह मान्यता है कि, 'इस जगत् का बना इश्वर है, सृष्टि का सर्जनहार ईश्वर है क्योंकि सामान्य व्यक्ति द्वारा इस जगत् की रचना होना अशक्य है।' परन्तु, उनकी यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ईश्वर को जगत्कर्ता मानने में अनेक दोष हैं।

ईश्वर ने किसलिए जगत् की रचना की? जब जगत् नहीं था, तब ईश्वर कहाँ था? क्या ईश्वर को अकेला रहना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए, उसने लाल करने के लिए, जगत् की रचना की। यदि ऐसा कहा जाये, तो ईश्वर बालक जैसा सिद्ध होगा।

यदि कहा जाये कि, इस जगत् की रचना ईश्वर ने की तब यह प्रश्न होगा कि, ईश्वर की रचना किसने की? और, उसके रचनवाले को फिर किसने बनाया? इसकी परम्परा चलेगी तो उसका कहाँ जाकर अंत होगा? थोड़ी दूर के लिए यदि ऐसा मान लें कि, ईश्वर ने जगत् की रचना की तो फिर एक को सुन्नी, एक को दुन्नी, एक को राजा, एक को गरीब, किसी को लड़का, किसी को लड़की, किसी को अंधा, किसी को अपंग तथा किसी को मूर्ख इस प्रकार विचित्र पूरा विश्व बनाने का क्या कारण है? मान्य ईश्वर की दृष्टि में तो सब समान हैं, तब फिर एक को सुन्नी करना और दूसरे को दुन्नी करना क्या ऐसा पशुप्राण हृन्तर में हो सकता है?

एक को मारना और एक को जीवित रखना—ऐसा करने में ईश्वर के किस प्रयोजन की सिद्धि होती है? इसके उत्तर में आप ऐसा कहें कि, यह सारी विचित्रता कर्म के कारण है, तो फिर नवीन पैदा हुए जीवों में कम कहाँ से आवे? इसलिए, मानना होगा कि, दुनिया अनादिकालीन है,



जीव भी अनादिकाल से है और कर्म भी प्रगाढ़ से अनादिकालीन है । और नये कर्म बाँधते हैं, पुराने भोगते हैं । इस प्रकार कर्मानुसार आत्मा की भिन्न भिन्न दशा रहती है । इसलिए इश्वर का कर्तृत्ववाद सत्यता वशोक्त कल्पित है । एक घर मजस आदमी रहते हैं, पर उसका पालन करनेवाले की जितनी उपाधि उठानी पड़ती है तब सारे ससार की उपाधि में पड़नवाले इश्वर को जितनी चिता रखनी पड़ती होगी । फिर तो इश्वर को हमारी अज्ञान अधिक उपाधियाँ गिना जाना चाहिये । और, एते उपाधि युक्त इश्वर की मुग्री कैने क्या खाकरना है ?

इश्वर यदि समर्थ है, तो उसने सबको एक समान क्यों नहीं बनाया ?

कोई ऐसा कहता है कि, पर तो कर्माधीन होते हैं, भिन्निकता भी कर्मानुसार होती है तो फिर उससे पूछा जाये कि, तब इश्वर ने विशेष क्या किया ? जब प्रत्येक आत्मा की कर्माधीन और कर्मानुसार वृत्ति मिलते हैं तो फिर इश्वर को बीच में डालने की क्या आवश्यकता महसूस हुई ।

इसलिए, ऐसी कल्पनाएँ करने की आवश्यकता नहीं । आत्मा और कर्मों के द्वारा ही सारी सृष्टि है । आत्मा और कर्म अनादि अवश्य है पर कम रहित आत्मा के लिए सृष्टि का अर्थ आता है । जो आत्मा धमचिरण द्वारा कर्मों का ताग कर टाँसती है, उस आत्मा की भुक्ति का अर्थ हो जाता है और वह परमात्मा बनती है ।

## जैन

माधु घम का पालन करना सामान्य व्यक्ति  
यह माग अत्यंत दुष्कर है। विरत आत्माएँ हैं  
की आराधना कर सकती हैं। जो आत्माएँ सा  
असमर्थ हों, उनके लिए दूसरा माग अन  
बनाया गया है।

सम्यक्त्व

## गृहस्थ के व्रत

जैन-गृहस्थ द्वारा पालन करने योग्य बारह व्रत हैं। उनमें से पहले पाँच को अशुभ्र, ६ से लगाकर ८ तक गुणव्रत और अन्तिम चार का शिष्टाव्रत कहते हैं।

### ( १ ) स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत

गृहस्थ रक्षायर जीवों की हिंसा का संपूर्ण त्याग कर नहीं सकता। उनके लिए वहाँ तक पहुँचना अशक्य है। इसलिए, गृहस्थ संपूर्ण रूप से दया का पालन नहीं कर सकता, फिर भी उस निरपराधी दिलने दुल्लनेपाए कितो भी वस प्राणी को जानबूझकर मारने की बुद्धि से मारना नहीं चाहिए।

और, प्रत्येक कार्य को इस प्रकार उपयोगपूर्वक करना चाहिए कि, जिससे स्थानर जीवों की भी हिंसा न हो (स्थानर अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और पनस्पति कार्यात्मक जीव)।

### ( २ ) स्थूल-भृपात्रादविरमण व्रत

यदि गृहस्थ असत्य भाषण का संपूर्ण त्याग नहीं कर सकता हो तो भी उसे ऐसे मिथ्या वचन का तो अवश्य ही त्याग करना चाहिए, जिससे कि दूसरों को आपात पहुँचता हो—जैसे कि झूठी साजी, झूठे दस्तावेज, झूठी सलाह या विश्वासघात अथवा ऐसे अन्य अनधिकारी शब्द का संपूर्ण त्याग होना ही चाहिए।

## ( ३ ) स्थूल-अदत्तादाननिरमण-व्रत

इसी प्रकार गरुड्य को चोरी का विष्णु त्याग करना चाहिए । फिर भी यदि घर का रस विष्णु से चोरी का संयुक्त त्याग न कर सकता हो, तो भी उसे किसी की जेब फतरा, गंड कटना, किसी का धराहर का पत्र खाना, ताने तोड़ना, गोटे बनाने या कम अधिक मात्रा परिमाण रखना, घर में सेंच लगाना, सूट पाग, धान्य की चोरी और टगी इत्यादि चोरी का तां भरण त्याग करना चाहिए ।

## ( ४ ) स्थूल-मैथुननिरमण-व्रत

गरुड्य यदि ब्रह्मचर्य का संन्यास पाप्मन न कर सकता हो तो भी उस परस्त्री का तो अवरुध त्याग करना चाहिए और अपनी स्त्री के साथ भी मथादित संवाग करना चाहिए अथवा महीन में कुछ दिन तो भ्रातृ ब्रह्मचर्य का पाप्मन करना ही चाहिए ।

## ( ५ ) स्थूल-पतिग्रहपरिमाण-व्रत

इच्छाओं का निराप करन के लिए प्रत्येक वस्तु का नियम रखना । धा, धान्य, मक्खन इत्यादि वस्तुओं का आपणपकता से अधिक संग्रह नहीं करना । उनका परिमाण करना । यदि व्यापार आदि द्वारा धन की वृद्धि हो जाये तो उस धार्मिक स्थानों में और दीन-शुली की भण्डार में मन कराना चाहिए ।

## ( ६ ) दिशापरिमाण-व्रत

उत्तर, शक्ति, पूर, पश्चिम इन चार दिशाओं उनकी मध्यवर्तिनी इमान, ऐक्य, आग्नेय, वायव्य चार विदिशाओं तथा उत्तर और अग्नि दिशाओं की ओर जाने-आने का नियम रखना ।

## ( ७ ) भोगोपभोगपरिमाण त्रत

भोग करो याग्य पदार्थों का नियम रखना जैसे कि आन इतनी वस्तुओं से अधिक का उपयोग न करना। उग्ररूँ लिए चौदह प्रकार के नियम बताये गये हैं। पाप परिणामकारक व्यापार नहीं करना, उनमें भी ऐसे व्यापारों का तो मुख्य रूप से त्याग होता ही चाहिए, निमित्त कि दित्त परिमाण बढ़ जाता हो।

जीवन पूर्वक ऐसा नियम बना लेना चाहिए, जिसमें लाने पीने, पहनने, ओढ़ने आदि गरीरक उपयोग में आनाली समस्त वस्तुओं का उपयोग से अधिक उपयोग न हो।

## ( ८ ) अनर्थदंड त्रत

दुष्कृत नही करना। वराध ध्यान से आत्मा मृत्यु के बाद दुर्गति में जाती है। किसी को भी पार का उपदेश न देना, शास्त्रात्मक निमाग न करना। छठी कथाओं की रचना न करना, न कथा, श्री कथा, भोग सम्बन्धी कथा और राप कथा का याग करना पाप का उपदेश न देना, सिनेमा, सर्कस इत्यादि का त्याग करना। इत्यर्थ न पापक्रम न करना। एव द्मिक प्राणी को नहीं पालना।

## ( ९ ) सामायिक त्रत

चित्त को समाधि में रखने और समस्त का सदा आस्वाद होने के लिए अमुक समय पूर्वक अथात् त्रिभिपूरक ४८ मिनट तक समभाव में रहना को सामायिक त्रत कहते हैं। परमा मा के ध्यान में जीव जाना, आत्मविभाग में नगपद होनेवाली सुखका का पन्न पाठन करना, व्यापार तथा आरंभ सनारभ का सदा त्यागकर ४८ मिनट तक एकप्रचित्त से धम ध्यान करना।

## ( १० ) देशान्तराशुिक व्रत

साल भर में कम से कम एक दिन तो आरम्भ समाप्त का सम्यक् त्यागकर तपश्चर्यापूर्वक व्रत साम्प्रदायिक करना ।

## ( ११ ) पौषघ व्रत

यदि आकाशमन साधु-जीवन स्वीकार न किया जा सकता हो तो भी साधु जीवन के अन्तर्गत के लिए साल भर में कम से कम एक दिन तो उपवास आदि तपश्चर्यापूर्वक पौषघव्रत को अवगाह्य करना ही चाहिए । इस व्रत के समय आरम्भ समाप्त त्यागकर १५ या १४ घंटे तक समभाव पूर्वक ज्ञान ध्यान आदि क्रियाकाण्ड में मग्न रहना चाहिए ।

## ( १२ ) अतिथिसन्निवाग व्रत

वर्ष में कम-से-कम एक दिन २४ घंटे तक चौविहार उपवासपूर्वक पौषघ करना और पौषघ के दूसरे दिन एकाग्रता करना । एकाग्रता के समय त्यागी शुद्ध मन्त्राग्न को भोजनादि बहराना, उस समय वे जो वस्तु प्रमाण करें उसी वस्तु का उपयोग करना । यदि किसी कारणवश साधु मन्त्राग्न का योग न हो तो अपने सधर्माश्रितों को भोजन कराना, भोजन करने समय वह जिन वस्तुओं का उपयोग करें उन्हीं वस्तुओं का स्वयं उपयोग करना ।

उपयुक्त इन चारह व्रतों का जो पालन कर सकता हो, उसे अवश्य इन व्रतों का पालन करना चाहिए, जो चारह व्रतों का पालन करने में असमर्थ हो उसे अपनी सामर्थ्य अनुसार आसानी से पाये जा सकें उन व्रतों का पालन करना चाहिए । एक भी व्रत का ग्रहण करनेवाला व्रतधारी जैन कहलाता है ।

और, जो एक भी व्रत का पालन नहीं कर सकते उन्हें सदैव प्रमुपव्रत, दशन, गुप्तरदन, अभय, कदमूठ तथा रात्रि भोजन का त्याग करना,

अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय, सधर्मी भक्ति, दीन दुष्टियों को सहायता दान, सामायिक, प्रतिष्ठापन, तप तप और नमस्कार मंत्र का स्मरण इत्यादि नित्यकर्म भद्रापूर्वक करने चाहिए । इन आचारों को पालन करनेवाला व्यक्ति भी जैन कहलाता है ।

और, यदि कुछ भी नहीं हो तो परमात्मा विमलेश्वरदेव ने जो उपदेश दिया है उन सव शब्दों में तमाम वचनों पर भद्रा रखना । इस प्रकार जैन-वचन पर भद्रा रखनेवाला भी जैन कहलाता है ।

ऊपर कही हुई विधि अनुसार किया करनेवाला धीरे धीरे कर्म के भार को हल्का कर सद्गति प्राप्त करता है और अन्त में शिवपुरी के अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है ।

केवल इतने ही विवरण से समझ में आ सकता है कि, जैन धर्म कितना व्यापक है । ससार के तमाम प्राणी जैन धर्म को अंगीकार कर, उसे आचरण में ला सकते हैं ।

कितने ही इस बात को नहीं समझनेवाले अनभिज्ञ बिना सोचे एकादम बोल उठते हैं कि, जैन धर्म व्यापक है, परन्तु उन लोगों को पता नहीं कि, जैन धर्म के सिद्धान्त कितने विशाल हैं, उनकी कितनी उच्चता है और चाहे जैसा अदना से अदना प्राणी अल्प या अधिक परिमाण में उनका आचरण कर सकता है ।

अन्त में जिसकी जैन धर्म के प्रति भद्रा हो वह भी जैन कहलाता है ।

जैन धर्म के सिद्धान्तों को विशेष रूप से समझने के लिए उस उस विषय की अनेक पुस्तकों का अवलोकन, पठन, चिन्तन मनन करना चाहिए ।

जैनसिद्धान्त के अनेके कमन्धन के ऊपर ही कितने विशालकाय धर्म आज भी मौजूद हैं । ज्योतिष विज्ञान, कम सिद्धान्त, आत्मवाद, परमात्मवाद, आत्मज्ञान, याग, याकरण, छंद, अन्तर, तर्क, आचार,

निवार इत्यादि अनेक विषयों के हजारों की संख्या में ग्रन्थ वर्तमानकाठ में मा उपलब्ध हैं ।

बिन्दे निरोप बिजासा हो उन्हें उन्हीं विषयों के जैन ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए ।

यदि मध्यस्थ दृष्टिवाला प्राणी सच्चे त्यागी गुरुओं के पास रह समता पूर्वक ऐसे अपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन करता रहे, तो उसे अक्षय दिव दृष्टि प्राप्त होती है ।





# स्याद्ववाद

जैन सिद्धांत पर स्याद्ववाद की छाप है अर्थात् जैन-दर्शन में हर सिद्धांत पर स्याद्ववाद की दृष्टि के विचार किया जाता है।

स्याद्वय शब्द 'स्यात्' और 'वाद' दो पदों का मिश्रण से बना है। इसमें 'स्यात्' का अर्थ है 'कथञ्चित्' अर्थात् 'किसी अपेक्षा से', यह अर्थ दर्शाता है और 'वाद' सिद्धांत अर्थात् पद्धति का ज्ञाता करता है। इसीलिए 'स्याद्वय' का 'अपेक्षावाद' भी कहा जाता है।

एक ही वस्तु एक दृष्टि से एक प्रकार की दिखती है पर वही वस्तु भिन्न अपेक्षा अर्थात् दृष्टि से भिन्न प्रकार की मिलती है। अतः किसी वस्तु को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए अनेक अपेक्षाओं अर्थात् दृष्टियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। स्याद्वय की यह मायदा होने के कारण स्वयं उसे 'अनेकान्तवाद' भी कहा जाता है।

स्याद्वय, अपेक्षावाद अर्थात् अनेकान्तवाद को गमना के लिए 'ता' का अर्थ '६ अंगे और हाथी' का दृष्टांत ठीक ठीक समझ लेना आवश्यक है।

## ढाल की दूसरी ओर

एक ग्राम में एक वीर पुरुष की मूर्ति स्थापित की गयी। उसमें एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल थी। ढाल एक ओर रुपहला थी और दूसरी ओर मुनहली। एक बार दो यानी दो भिन्न दिशाओं से मूर्ति के निकट आ पहुँचे और उस मूर्ति पर अपना अपना मूल प्रकाश करने लगे।

एक मुखातिर बोला—“यह मूर्ति कितनी सुन्दर है। और, इसकी क्या दास का क्या कहना !”

यह सुनकर दूसरा यानी बोला—“यह दास कपटली नहीं, मुनहली है। आप धरा टोक से देखिए।”

पहले यानी ने बड़ी सावधानी से दास को पुन देखा बाला—“यह निन्दुष कपटली है। सोन का इसमें लेहमात्र अंश नहीं है।

दूसरे यानी का धैर्य टूट गया और बोत पड़ा—“लगता है, तुम भले हो, नहीं तो मुनहली दास को कपटली कहते कैसे !”

इस प्रकार दाना में बाद बिनाद चल पड़ा और लड़ाई का नीरव आ पहुँची। इतने में ग्राम का एक सभ्रान्त पुरुष उस ओर आ निकला और बिनाद का कारण जानकर बोला—“आप लोग व्यर्थ ही झगड़ रहे हो। यह दास कपटली भी है और मुनहली भी है। दास दूसरे को मिथ्या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। आप लोग एक दूसरे की जगह पर जाकर पुन दास को दूसरे तब दास का सही रंग समझ सकेंगे।”

दोनों ने उस सभ्रान्त व्यक्ति का कहना मानकर दास को स्थान परिवर्तन करके जो देखा तो उन्हें अपनी भूल समझ में आ गयी।

## ६ अन्धे और हाथी

एक बार एक स्थान पर ६ अन्धे एकत्र हो गये। उन सभी में हाथी के सन्तप में मुन रखा था पर कभी उसका सा ताकार उन्हें नहीं हुआ था। अत वे रात्ता के महास्त क पास गये और हाथा को स्पर्श करके उसका अनुभव करने के लिए उसकी चित्ती करने लगे।

महाका ने उन्हें अनुमति दे दी। अत वे स्पर्श करके हाथी के सन्तप में जानकारी प्राप्त करने में जुट गये। पहले के हाथ में हाथी का फान आया। वह बोला—“हाथी तो सूँघ सरीखा है।” दूसरे के हाथ में सूँड़ आया। वह बोला—“मह, मुने वा हाथा सोंगे-सा लगता है।” तीसर

का हाथ हाथी के पैर पर पड़ा। अतः उसने कहा—“हाथी ठीक साम्य सरीला है।

चौथे ने गेंद मुआ और भाग—“यह तो खूँ बैल है।”

पाँचवें का हाथ पं पर पड़ा। पं स्थिर करके यह बोला—“यह पं पनाद की तरह लगता है।”

छठे ने गुँछ मूर और कहा लगा—“मुझे तो यह ठीक रम्मी की तरह लगता है।”

हर अध्या यह समझता था कि, क्या उसकी बात सत्य है और गुप सच छुट कर रहे हैं। इन प्रकार उत अधों में विवाद हो गया।

महायत अधों का बात प्यानूपक मुा रहा था। विवाद होना दम कर यह निक्क आकर बोला—“अरे भाई, तुम लोग क्यों विवाद कर रहे हो। तुम में से किसी ने गुण रूप से हाथी का साक्षात्कार नहीं किया। तुम सबने उसका एक एक अंग स्वयं किया है और उठो ज्ञान के आधार पर हाथी के रूप के सम्बन्ध में अपना अपना मन व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया है। इसी कारण तुम सब विवाद कर रहे हो। मैं तो निय हाथी देखता हूँ। अतः कह सकता हूँ कि, हाथी गुप की तरह भी है, मूँवेण के समान भी है, रस्सी के समान भी है, लम्बे के समान भी है और खूँ के समान भी है।”

महायत की बात सुनकर उत अधों को अपनी भूत का ज्ञान हो गया और वे चुप हो गये।

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि, “यन्ति वस्तु को जिस अंगेना अधया दृष्टि से दृश्यता है, उसी दृष्टि से उसका यह दण्ड करता है। उसका वणन मय अध्या है पर माप उधे दृष्टि में रखकर हम अध दृष्टि से उपर व अनुमन को मिथ्या नहीं कह सकते। तात्पर्य यह कि, किसी वस्तु के स्वरूप को ठीक ठीक समझने के लिए विभिन्न अध्याओं से उधे देखना आवश्यक है।

यदि इस रूप में वस्तु को रखा जाये तो जगत् की प्रत्येक वस्तु अन्त-  
र्यामक सिद्ध होगी । एक विशेष उदाहरण में यह बात स्पष्ट हो जायेगी ।

एक ही व्यक्ति क्षेत्र की अवस्था से 'आत्मा' है वन की अवस्था में यही  
'देव' कहलाता है ग्राम की अवस्था में 'नागोरी' कहलाता है । विना की  
अवस्था में यही 'पुत्र' है पुत्र की अवस्था से यही 'पिता' है, पत्नी की  
अवस्था में यही 'पति' है और वन की अवस्था में यही 'मार' है । इस  
मित्र मित्र अवस्थाओं से वही एक व्यक्ति में मित्र मित्र भय सम्भव  
निष्पन्न है ।

इसमें किसी एक अवस्था को पता में रखकर उसका प्रतिपादन करना  
'नर' कहलाता है 'नर' में सत्य का अर्थ हाँग अवश्य है, परन्तु यदि अन्य  
घनों का विरोध किया जाये तो वह कथन को असत्य कर देता है ।

पचहत्तर वर्ष का एक बृद्ध पुरुष है । उस बृद्ध पुरुष के पञ्चांगीत  
वर्ष का एक पुत्र है और उसका भी पन्द्रह वर्ष का एक पुत्र है ।

अब यदि उस पञ्चांगीत वर्ष के मनुष्य को ब्रह्म पिता हाँ कन्या जाय  
तो वह कन्या मिथ्या ठहरता है क्योंकि वह उससे पञ्चांगीत वर्ष के बृद्ध  
पिता की अवस्था से पुत्र भी है । इसी प्रकार यदि उस पञ्चांगीत वर्ष के  
मनुष्य का केवल पुत्र ही कन्या जाये तो वह कन्या भी मिथ्या होता है,  
क्योंकि वह अपना पन्द्रह वर्ष के पुत्र की अवस्था से पिता भी है । इस  
प्रकार वह एक ही व्यक्ति पिता भी है और पुत्र भी है ।

इसीलिये, वस्तु के पूर्ण स्वरूप को समझानेवाला व्याख्या है । वस्तु के  
केवल एक ही गुण या धर्म को देखकर वह वस्तु धर्मी हाँ है, ऐसा कहना  
भ्रमात्मक है, क्योंकि उसी समय ऐसे अनेक दूसरे गुणों का सङ्घाटन रहता  
है । व्याख्या को ठीक तरह से समझ लिया जाये, तो वस्तु का सच्चा स्वरूप  
जाना जा सकता है । आँखों से निम्नाह देखाया यह अमन क्या है ?  
उसकी वस्तुएँ पैनी हैं ? उसका स्वरूप क्या है ? उसके गुणधर्मों की

हैं ! इत्यादि वस्तुओं के सघ्न स्वरूप को समझानेवाला ग्यादाद है।  
अहिंसावाद, अपरिमितवाद तथा स्वात्वाद इत्यादि जैनियों के मुख्य  
स्वभरूप हैं और इसलिये जगत् में जैनियों को सर्वोपरि कहा जाता है।  
इन सिद्धांतों के कारण ही उस विशिष्टता कहा जा सकता है।

जैन दर्शन का अंगीकार करने पर अहिंसा का जो निश्चयन इतिहास  
में आता है, यह वस्तुतः मनुष्य का दिग्भूत भाव है। जाय किसे  
कहना ? यह किसमें रहता है ? उसका स्वरूप, भाव दया और द्रव्य दया,  
हिंसा और अहिंसा का सदा वृत्तवर्तन, कम दान इत्यादि अनेक  
सत्यताओं का जो सिद्धांत में ही प्राप्त होगा।

## पइन्द्रव्य

(१) घमास्त्रिकाय, (२) अधमास्त्रिकाय, (३) आकाशास्त्रिकाय, (४) पुद्गलास्त्रिकाय, (५) जीवास्त्रिकाय और (६) अद्रा समय अथात् काल—ये छ द्रव्य कहलाते हैं।

१ घमास्त्रिकाय—गमन करनेवाले प्राणियों और गति करनेवाली वस्तुओं को उनकी गति में सहायता पहुँचानेवाला पदार्थ 'घम' कहा जाता है। अस्ति अर्थात् प्रदेश और काय अथात् समूह। ऐसे पदार्थों के प्रशों के समूह को घमास्त्रिकाय कहते हैं। मछली में गति करने का सामान्य है और उसकी जाने की इच्छा भी है परन्तु वह निमित्त-कारण रूप पानी के बिना गति नहीं कर सकती। पानी के आग्म्यन की तरह गति करने में सहायक होनेवाला द्रव्य ही 'घमास्त्रिकाय' है।

२ अधमास्त्रिकाय—'अधमास्त्रिकाय' प्राणी को ठहराने में सहायक होता है। यदि किसी स्थान पर सदाग्रत की अच्छी चरम्या हो, तो भिक्षुओं की इच्छा वहाँ ठहरने की होती है। ये सदाग्रत भिक्षु लोगो के साथ पकड़कर उन्हें वहाँ नहीं ले जाते, परन्तु उस निमित्त की पाकर भिक्षु वहाँ निवास करते हैं। चलने बलते यात्री थक गया हो, तो उस समय वृत्र की छाया की तरह 'अधमास्त्रिकाय' भी ठहराने में सहायक होती है।

३ आकाशास्त्रिकाय—इसका गुण अस्काग अथात् अगह देने का है। यद्यपि आकाश आँखों या दूसरी इन्द्रियों द्वारा देगा नहीं जा सकता, फिर भी अस्कागद्वारा वह जाना जाता है। लोक सम्बन्धी आकाश को 'लोककाय' और अलोक सम्बन्धी आकाश को 'अलोककाय' कहते हैं। घमास्त्रिकाय तथा अधमास्त्रिकाय के सहयोग से ही लोक में जीव और

पुद्गलों की गति और स्थिति है। अनेक म हा गेनों पदार्थों का सङ्घाटन होने से, यहाँ न तो एक भी अणु है और न जीव है। यहाँ शोक में से क्रोध भी अणु या जीव जा भी नहीं सकता, क्योंकि गति में सदातक और स्थिति करानेवाले उपरोक्त दोनों 'धर्म या अधर्म' द्रव्य यहाँ नहीं हैं। आकाश द्रव्य विस्तार में अनन्त है अर्थात् उसका कहीं अन्त नहीं है।

४ पुद्गलान्निष्ठाप—परिपूर्ण होता और गिर पड़ता, अग्न हो जाना इत्यादि स्वभाववाले पदार्थ को 'पुद्गल' कहते हैं। पुद्गल का कुछ हिस्सा चक्षुष्य प्रत्यक्ष होता है और परमाणु जैसे कुछ पुद्गलों की सत्ता अनुमान प्रमाण द्वारा जानी जा सकती है। घड़ा, चार, पात्र, महल, गाड़ी इत्यादि पदार्थ स्पष्ट पुद्गलमय हैं, क्योंकि ये सब पदार्थ हमारी दृष्टि में आते हैं। इनके सिवाय भी पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म हैं, उनकी सिद्धि अनुमान प्रमाण द्वारा हो सकती है, जैसे परमाणु ठगके बाद द्रव्यलुक फिर बरसेलु इत्यादि घड़, प्रकाश, छाया, ताप और अघट्यार इत्यादि पुद्गल के ही प्रकार हैं।

५ जीवान्निष्ठाप—चैतन्यस्वरूप आत्मा को जीव कहते हैं। 'म सुप्ती हूँ, मैं टुल्लो हूँ', ऐसा अनुभव किसी मृतक को नहीं होता क्योंकि उस समय उसने चैतन्य स्वरूप आत्मा नहीं रहती। यह वर्तमान शरीर को छोड़ अपने कमानुसार दूसरे शरीर में चली जाती है। कुल्हाड़ी से लकड़ी काटी जाती है, परन्तु कुल्हाड़ी और काटनेवाला अलग अलग होते हैं। दीपक से देखा जाता है, परन्तु देखनेवाला और दीपक दोनों भिन्न भिन्न हैं। उसी प्रकार इन्द्रियों द्वारा रूप, रस इत्यादि ग्रहण किये जाते हैं। परन्तु, इन्द्रियों और उन वियों का अनुभव करनेवाला दोनों अलग अलग हैं। आत्मा सचेद काली या पागी इत्यादि किसी वण की नहीं होती इसीलिए उसका इन चर्मचक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता, फिर भी अनुमान प्रमाण से उसकी स्थिति ज्ञेयी है।

६ काल—गद् द्वीपनी परम सुममाव है। एक समान रूप वहाँ होने से एक ही रूप में रह सकती है। एक समान जातिवाले कुछ इन्सान में एक ही रूप में रहने के कारण विशिष्ट परिवर्तन होते हुए भी एक ही रूप में रहती है। 'काल' की नियामकता सूचित करती है। इस नियामकी की अवस्था छोटी है, यह बनकर बड़ा हो सकती है। इसी वजह से सम्भव हो सकती है। इसलिए यह एक ही रूप में रहना सुगम तथा शकाविहीन है।

जैन-वचन सम्मत इन ६ द्रव्यों पर शब्दों का प्रयोग है। अतः तो वैज्ञानिक भी मानने लगेंगे कि पदार्थों का स्वरूप और वातावरण का प्रभाव व्यापार से मिलते जुलते तथा ठहरते हैं, जिससे वे एक ही रूप से किसी एक शक्ति की अवस्था रहते हैं। 'धर्मास्तिकाय' के अस्तित्व में प्रकट प्रमाण है। इससे अधिक विस्तृत है कि, उस विषय का निर्माण हो सकता है, परन्तु यहाँ स्पष्ट रूप से दर्शाया है।



## जैन-तप

जैनों को तपश्चर्या विश्व विख्यात है। जैनों के उपवास बड़े कठिन होते हैं। इनमें रात्रि या दिन के समय जगाहार, मांस, मिष्ठान, छास या मोसम्बी इत्यादि कोई भी पदार्थ नहीं ली जाता। तपश्चर्या इन्द्रियों का दमन करने के लिए की जाती है। जैन लोग अपनी आत्मा शुद्धि के लिए ऐसी उम्र तपश्चर्या प्रसन्नतापूर्वक महीने महीने तक करते हैं। ऐसी विधिपूर्वक तपश्चर्या करने से शरीर शुद्धि भा होती है तथा अनेक असहाय्य रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। उपवास दूर हाँसे, ईर्ष्या, अशुभ कर्मों (पाप) का नाश होता है, अन्तराय कम नष्ट हो जाता है। आत्मा पुण्यशाली, सुखा और समृद्ध बनती है। हजारा की आधाररूप होती है। ऐसी तपश्चर्या करने से हजारों जीवों की रक्षा होती है, इसलिए तप में दया भी समायी हुई है। तप से घम बढ़ता है, पाप घटता है। सुख बढ़ता है और दुःख घटता है, समृद्धि बढ़ती है और दरिद्रता नष्ट होती है। आत्मा प्रभावशाली बनती है इसलिए प्रायः मनुष्य को अपनी गति के अनुसार ऐसी तपश्चर्या करनी चाहिए।

लौकिक पदों के समय दूसरे लोग अपनी आत्मा का अस्थायी स्वरूप भूलकर एकाग्रता में तल्लीन रहते हैं, अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ भ्रमण करते हैं, पर जैन पदों की यद् मद्भत्ता है कि, उस समय वे इन्द्रिय दमन, तप, त्याग और समीचीन जीवन चित्ताने का पाठ सिखाते हैं। जैनों का समाज पदार्थों का अपूर्व ज्ञान अर्पित करता है।

## ज्ञान क्रियाभ्या मोक्षः

जैन-सिद्धान्त का आदेश है कि, केवल अनेक 'जन' तथा अनेक 'क्रिया' से मुक्ति नहीं मिलती। अनेक ज्ञान लगता है और अनेक क्रिया होती है। रथ दो पहियों द्वारा ही चल सकता है। मनुष्य भी मुक्तियों द्वारा दुर्लभ्य समुद्र को तिर सकता है। उसी तरह आत्मा भी 'सम्यग्ज्ञान' तथा 'सम्यक् क्रिया' द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकती है। एक आत्मा भग्न होने का रास्ता जानना है, पर यह केवल ऐसा करने मात्र से हाथों तक नहीं पहुँच पाता, यहाँ पहुँचने के लिए उसे चला होगा, चलने से ही धीरे धीरे यह अपने इष्टस्थान तक पहुँच सकेगा। मात्र का नाम देने मात्र से शुद्धा की प्राप्ति नहीं होती, उसके लिए मोक्ष बनाने की क्रिया करनी पड़ती है। पण्डित अंगीरस जयन्त, अर्जुन मन्त्र कथन के बाद भी जब तक खाने की क्रिया नहीं की तब तक उन्नति नहीं होती। हाथ से निवाला उठाकर मुँह में डालने बाद ही शुद्धा प्राप्त होती है। उसी प्रकार 'सम्यग्ज्ञान' इस तरह क्रिया की जाने लगी प्राणी मुक्तिपथ में पहुँच सकता है। इस ज्ञानमय से आत्मा भग्न और असंशुद्धि द्वारा ही इन दोनों की प्राप्ति है। उन्हें न करने के लिए सम्यग्ज्ञान और सम्यक् क्रिया आवश्यकता है।

## रात्रि-भोजन

जैन शास्त्रों में रात्रि भोजन विशेष रूप में निषिद्ध माना गया है। रात्रि भोजन करने से मनक सूख तथा वादर और उठे तथा बड़े जोरों की हिंसा होती है। सूखास्त होते ही और सध्या के प्रारम्भ होते ही अंधकार फैलने लगता है। उम समय अगणित सूक्ष्म जीव उड़ने लगते हैं। उन्हें हम भिज्ज के प्रकाश में भी नहीं देख सकते। ये समस्त जीव जो हमें दृष्टिगोचर नहीं होते रात्रि भोजन से नाश को प्राप्त होते हैं। रात्रि के समय भोजन करने से कभी कभी विषाक्त बीब आ जाने से मरण भी हो जाता है। यदि व्यक्ति जूँ खा जाये तो जनेदर रोग हो जाता है। कीड़ी खा जाये तो भुद्धि म्र हो जाती है, काँग-खरीखा सूक्ष्म गूल आ जाये तो भयंकर कष्ट भोगना पड़ता है और कभी कभी प्राण से भी हाथ धोना पड़ता है। ऐसी स्थिति में रात्रि भोजन का त्याग शारीरिक दृष्टि से कितना आवश्यक है, यह बात सहज ही समस्त में आ सकती है। जिस प्रकार किसी मजदूर को मजदूरी करने के बाद विधाम की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार पेर को भी विधाम अपेक्षित है।

रात्रि भोजन करनेवाला व्यक्ति इस लोक में मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् परलोक में त्रिप्पी, शुद्ध, कीआ, चूकर, बिच्छी, गुनैर आदि पशु की योगि में जन्म लेता है। रात्रि भोजन यस्तु नरक का द्वार है।

चत्वारि नरक द्वाराणि, प्रथमं रात्रि भोजन ।  
परश्चा गमनं चैव, संधानान्तरकायिके ॥

## —नरक के चार द्वार हैं ।

( १ ) रात्रि भोजन ( २ ) परस्त्रीगमन ( ३ ) कच्चे मिना खाए कल  
का अचार और ( ४ ) अनन्तकायिक कन्द भोजन करना ।

मद्य मांसार्थं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणं ।

यं कुर्वन्ति कृपा कृपा, तार्यथात्राप्यस्तपः ॥

—जो व्यक्ति मद्य, मांस, रात्रि भोजन और कन्द भक्षण करता है,  
उसके लिए तीर्थयात्रा, जप और तप सब व्यर्थ हैं ।

मारकण्डेय'पुराण में मारकण्डेय ऋषि ने कहा है—

अस्तगते दिवानाथे, आपो रश्मिमुच्यते ।

अथ मासं समं प्रोक्तं, मारकण्डेय महर्षिणा ॥

—सूर्योदय के पश्चात् जल पीये तो यह रश्मि के समान है और अथ  
मास के समान है ।

मृते स्वजनं मात्रेऽपि, सूतके चापते किल ।

अस्तगते दिवानाथे, भोजनं किमुत्रियते ॥

—स्वजन की मृत्यु पर जैसे सूतक लगता है, व्यक्ति कुछ खाता नहीं  
तो फिर दिन के नाथ—सूर्य—के अस्त होने पर भोजन कैसे किया जा  
सकता है ।

कहा गया है—

ये रात्रौ सखाऽऽहारं, सर्वयन्ति सुमेधम् ।  
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥

—जो व्यक्ति रात्रि भोजन का त्याग करता है, उसे मास में पन्द्रह दिन उपवास करने का फल मिश्रा है ।

अब स्पष्ट है कि, हिंसा के महान् दोष से रक्तों के निमित्त सुख बन रात्रि भोजन का त्याग करते हैं ।





यन्त्रवाद ने आज हजारों आदमियों को बेकार बना दिया है। मनुष्य आज दीन, हीन और निर्जीव बन गया है, इस परिणाम का कारण आज का यह यन्त्रवाद ही है। जैसे जैसे विज्ञान प्रदत्त साधन बढ़ते गये, वैसे वैसे दुनिया में दुःख और अज्ञाति बढ़ती ही गयी है। प्राचीन काल में देश कितना सुखी और समृद्ध था ? देश में कैसी शांति थी ? आज तो चारों ओर मय का आतंक छाया हुआ है। विश्व में अशान्ति फैली हुई है। पर, मनुष्य को अभी यह समझ में नहीं आता।

हमारे ही शास्त्रों द्वारा इन लोगों ने शोध के काय को आगे बढ़ाया और इतने बड़े आविष्कार किये हैं क्योंकि हमारे पूर्व महापुरुष बड़े ज्ञानी थे।

हजारों वर्ष पहले ऐसी यन्त्र सामग्री नहीं थी, ऐसे आविष्कार के ऐसे साधन नहीं थे फिर भी विज्ञान द्वारा जो जो बातें सिद्ध होकर प्रकाश में आती हैं, उन सब वस्तुओं को ऋषि मुनि लोग अपनी अप्रतिमज्ञान द्वारा देखकर पहले ही बधन कर गये हैं क्योंकि वे महापुरुष सात्विक महाज्ञानी थे।

शास्त्रों में जब हम पहले विमानों की बातें सुनते थे तब अनेक लोग बहुत जल्दी बोल उठते थे कि यह सब गप है। पर, जब साक्षात् विमान उड़ने लगे तब उन्हें मालूम हुआ कि, शास्त्रों में वे महापुरुष जो कुछ लिख गये वह सब पूरा सत्य था।

जगदीशचन्द्र बसु ने जब प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर बताया कि, वनस्पति में जीव है, प्राणी के स्वभाव के अनुसार वह सुख दुःख का अनुभव करती है और उसका संकोच विस्तार होता रहता है, तब वहाँ बाहर के लोग वनस्पति में जीव मानने लगे। परन्तु, हमारे प्राचीन जैन शास्त्रों में तो हजारों वर्ष पहले से ही यह सब बताया गया है।

जगदीशचन्द्र बसु ने वर्षों पहले जमनी में आपण देते समय बताया था कि, मैंने वनस्पति में जीव की सिद्धि कर सरके नामने जो यह बात

अन्तर्गत, मनःपत्रिकायिक जीव, शल्यरहित, मेदिना,  
 एन्ड, चोपान-पदति आदि अनेक बातें का पण शब्दों में थी,  
 "यह" कहने विज्ञान द्वारा आश्चर्य किया है।

अन्तर्गत का विज्ञान अधूरा है, अपूर्ण है, इसलिये प्रतिनिधि नहीं ज्ञात  
 "ने" शब्द रची है। वैज्ञानिकों को बार बार अपना निदान बताना  
 पड़ा है। कुछ वर्ष पहले अमेरिका के पास हजारों मील अन्तर्गत  
 एक दूध प्रकार में आया। ये सभी नया नया "जो" ही यह निदान जारी  
 है कि, ये अभी भी अधूरे और अधूरे हैं।

अन्तर्गत आदमियों पर हम का पूरा विश्वास रहने /, यह  
 हमारी किन्ती बड़ी विवेकशीलता है। वक्तव्य कल्पानों के अन्तर्गत  
 हा चल रहे हैं।

अन्तर्गत स्कोर्वीन ने सुप्रसन्न द्वारा बानी के एक विन्दु में अपना  
 विज्ञान ३६४ • जीव सिद्ध कर प्रताप। जब कि, हमारे शरीर में  
 नि एक विन्दु में अन्तर्गत फिरनेवाले जीवों के अन्तिमि ३६४ ३६४, ११  
 और भी अक्षय्य हैं। पर, व सब अक्षय्यता ही हाथ में ३६४  
 रहने हैं।



वैज्ञानिक लोग पहले यह बतलाते थे कि, एक सूई की नोक जितना जगह में सेरुद्धों परमाणु रह सकते हैं। अब वे ही वैज्ञानिक सूक्ष्म दशक यंत्र द्वारा देखकर यह बतारहे हैं कि सूई की नोक जितनी जगह में लाखों अणु भी रह सकते हैं। इसके विपरीत हमारे पूर्वापि ज्ञानी तो ऐसा कन्त हैं कि, एक सूई की नोक जितनी छोटी जगह में अनन्तानन्त परमाणु, जीव आदि रह सकते हैं।

वैज्ञानिक तो जैसे जैसे उन्हें साधन मिलते गये, जैसे जैसे भागे बढ़ते गये और पन्थे को मिथ्या ठहराते गये। ठाका किसी चीज का नवीन ज्ञान होने पर, तदनुसार अपना मन बदलना किसी अश्व में ठीक है, क्योंकि अपूर्ण पुरुष पृथ्वी बात किस प्रकार कह सकता है ? तब अपूर्ण को पूर्ण मानने में कितनी भूल होती है, उसे पाठक सहज ही समझ सकेंगे।

इसलिए पूर्ण वस्तु का पूर्ण रूप से स्वीकार करने में तथा ऐसे सचे ज्ञान का बतानेवाले परमात्मा की उपासना करने में मनुष्य क्यों भूल करता है, यह समझ में नहीं आता। इसका कारण केवल एक ही है, उसका भयानक अमी भावी है। इसलिए वह सब्बे को मिथ्या मानता है।

अभी तक दुनियाँ की जितनी खोज हुई है, उन्हींके अनुसार ससार के नक्शा चित्रित किये जाते हैं, परन्तु अब ये नक्शे भी झूठ सिद्ध हो रहे हैं। क्योंकि, अभी कुछ इस प्रकार के ताने समाचार प्रकाशित हुए हैं कि, अभी तक दुनियाँ की जितनी खोजें हुई हैं, उतनी ही अभी दूसरी दुनियाँ है। तब जैन शास्त्र तो पुकार पुकारकर कहते हैं कि, दुनियाँ बहुत बड़ा है। अस्वरथात योजन प्रमाण हैं। आज का विज्ञान सीमित है, इसलिए उसकी बातें कुछेक में एक के समान हैं। कुछ का में एक दुनियाँ का कुछ जितना ही बतलाता है, पर उसकी बात कोई नहीं मानता। उसी प्रकार अग्रेरी शोध खोज करनेवालों की भी ऐसी बातें नहीं मानी जा सकती।



स्थित है। उन सात ताराओं की शृंखला घूमती है, इसलिए वह घूमती हुई नीचे पड़ती है और ध्रुव घूमता नहीं इसलिए वह स्थिर दीगता है। यदि पृथ्वी घूमती होना तो जय तारों की तरह ध्रुव भी घूमता हुआ दिखाई देता। परन्तु ऐसी बात नहीं है। इसलिए हम सुविधि से भी समझ सकते हैं कि पृथ्वी स्थिर है, वह घूमती नहीं, और यह सिद्धान्त भी अनादिकालीन है कि पृथ्वी स्थिर है। सूर्य, चन्द्र, मङ्ग, नक्षत्र तथा तारागण चक्कर लगाते रहते हैं। और, उसी प्रकार हम अनुमान से भी ज्ञान करते हैं।

पृथ्वी को भ्रमणीय माननेवालों में भी अब मतभेद उत्पन्न होने लग है। उनमें कुछ लोग अब पृथ्वी को स्थिर मानने लग गये हैं। इसलिए, केषा कल्पना करनेवालों पर परिपूर्ण विश्वास नहीं रखा जा सकता। परिपूर्ण विश्वास केवल सिद्धान्त पर ही रखा जा सकता है।

सिद्धान्त का प्रस्तुत करने परमात्मा ने किया है, इसलिए वह शाश्वत और अविचल है।

यह सिद्धान्त त्रिकालाबाधित है। इसका किसी भी काल में परिवर्तन नहीं हो सकता। परिवर्तन शून्य का होता है, सत्य का नहीं। सत्य का परिवर्तन होने पर उसकी गणना शून्य में होगी। जैसे दो और दो चार होते हैं, हमारी वष पहले भी ये दो और दो चार ही थे और आगे भी ये दो और दो चार ही रहेंगे। इस प्रकार तीनों काल में दो और दो चार ही रहेंगे। क्योंकि, वह सत्य है। दो और दो को तीन या दो और दो को पाँच कहें तो वह शून्य गिना जायगा। इसी प्रकार सर्वज्ञ द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त त्रिकालाबाधित है और सत्य है।

जेन धर्म अनादिकालीन द्वे

## जगत की दृष्टि में

जैन धर्म के विशाल संस्कृत साहित्य को यदि प्रथम कर लिया जाये तो संस्कृत कविता की क्या दशा होगी ? हम सम्भवतः न जैने जैसे हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है, वैसे-वैसे हमारे आत्मयुक्त आत्मन में वृद्धि होती है ।

डॉ. हर्टल ( जर्मनी )

जैन दर्शन स्वतंत्र दर्शन है । मैं अपना यह निष्पत्ति प्रकट करना हूँ कि, जैन धर्म मूल धर्म है । यह सब दर्शनों से प्रियुक्त भिन्न और स्वतंत्र है । प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धार्मिक जीवन के अभ्यास के लिए यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण है ।

डॉ. हर्मन याकोबी ( जर्मनी )

जैन दर्शन बहुत ही उँचा कोटि का है । इसके मुख्य तत्त्व प्रिजापराशर के आधार पर रच गये हैं । जैसे-जैसे पदार्थविज्ञान ज्ञान बढ़ता जाता है, वैसे वैसे जैन धर्म के सिद्धांतों की भी सिद्धि होती जाती है ।

डॉ. एल. पी. टेम्पेस्टोरी  
इटालियन विद्वान

जैन धर्म मध्याम में न तो हिंदूधर्म है और न वैदिकधर्म है । यह भारतीय जीवन, संस्कृति तथा तत्त्वज्ञान का मुख्य साधन है ।

जवाहरलाल नेहरू

जैन धर्म का उद्भव और इतिहास स्मृति गाथा तथा उनकी टीकाओं से बहुत प्राचीन है। जैन धर्म हिंदू धर्म से मिल्युल भिन्न और स्वतंत्र है।

श्री कुमारस्वामी शास्त्री

मद्रास हाइकोर्ट के प्रधान न्यायमूर्ति

विश्व के अग्रतिष्ठ सिद्धान्त जार्ज जनाउशा ने एक बार देवदास गांधी से कहा—“जैन धर्म के सिद्धान्त मुझे बहुत प्रिय हैं। मेरी यह इच्छा है कि, मृत्यु के बाद मैं जैन परिवार में जन्म ग्रहण करूँ।”

जैन धर्म के सिद्धान्तों से प्रभाव के कारण वे निरामिष मोचन करते थे।

जार्ज बर्नार्ड शा

जैन धर्म न समार को अहिंसा की शिक्षा दी है। किसी दूसरे धर्म ने अहिंसा की मयादा यहाँ तक नहीं पहुँचायी। जैन धर्म अपने अहिंसा सिद्धान्त के कारण विश्वधर्म होने के लिए पूर्णतया उपयुक्त है।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

जैन धर्म में उच्च आचार विचार और उच्च तपस्व्यता है। जैनधर्म के प्रारंभ को जानना असंभव है।

फरलाग

मेजर जनरल

ऋग्वेद में भगवान् ऋषभदेव के सद्भावस्थापक मंत्र में बताया गया है।

ऋषभ मासमानाना सप्तताना त्रिषासहस्रान्तर शत्रुणां दधि विराज गायिर्न गयाम् १०१-२१-२६

जैन सिद्धान्त अमरिगिरुप न प्राचीन का है, क्योंकि 'अन्न इदं दयमे विरयमयम्' इत्यादि वेद वाक्यों में भी इसी प्राचीनता स्पष्टम पड़ी है ।

प्रा० विरुपाक्ष, लम व, धैर्याय  
वैदिक विद्वान्

कत्रद भाषा क आशक्ति जैन ही से । प्राचीन और उद्भूत गार्हपत्यना का अर्थ जैनो का है ।

राय नरसिंहाय

आधुनिक इतिहासिक शोध न यह प्रकट हुआ है कि, मध्याय में प्राक्षान घम क सङ्काच जयरा उसक हिंसात्मक में परिवर्तन होने के बहुत पहले जैन घम हम न में विद्यमान था ।

श्याममूर्ति रागादेकर  
चंबड हाडका

मोहनादरो, प्राचीन शिल्पालेख, गुफाएँ तथा अन्य प्राचीन अवशेषों के प्राप्त होने से भी जैन घम की प्राचीनता का स्पष्ट भासा है ।

जैन मत त्य प्रचलित हुआ जब कि, सृष्टि की प्रकृति दूर । म भी यह मानता हूँ कि, वेदात्त दर्शन न भी जैन घम बहुत प्राचीन है ।

श्यामी रामसिंघजी शास्त्री  
प्रा० संस्कृत कानून बनारस

पर इस कथन में थोड़ा भी आशङ्कति नहीं है कि, जैन-वचन क काल क पहले भी जैन घम अवश्य था ।

डा एल राधाकृष्णन  
राष्ट्रपति

जैन साधु वस्तुतः प्रासनीय जीवन व्यतात करते हैं। जैन मानु पूर्ण रूप से व्रत, नियम और इन्द्रिय-संयम का पालन कर विश्व में आत्मसमरप का एक शक्तिशाली तथा उत्तम आदर्श उपस्थित करते हैं।

एक गृहस्थ का जीवन भी जिसने कि जैनत्व (जैन आचार विचार का पालन करनेवाला) अंगीकार किया है, वह इतना अग्रिम निर्वाण होता है कि, भारतवर्ष को उस पर अभिमान होना चाहिए।

डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण  
जन्म ७, पी जे वी हा कलकत्ता

प्रयों तथा सामाजिक व्याख्यानों से यह बात प्रकट होता है कि, जैन धर्म अनादिकालीन है। यह विषय निर्विवाद और मतभेद विहीन है तथा इस विषय में इतिहास व प्रकट प्रमाण भी हैं।

—लोकमान्य बालगंगाधर टिलक

ऐतिहासिक सन्दर्भ में जैन-साहित्य जगत के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। यह इतिहास लम्बकों तथा पुरातत्त्व विद्वानों के लिए अनुसंधान की विपुल सामग्री अर्पित करता है।

डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण  
जन्म ७ पी जे वी, कलकत्ता

विश्वशांति-संस्थापक सभा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जैनों को ही है क्योंकि अहिंसा ही विश्वशांति का साम्राज्य पट्टा कर सकती है और जगत को इस अमोघी अहिंसा की मूर्त जैनधर्म के नियामक तीर्थंकर परमात्माओं ने का है। इसलिए, विश्वशांति की प्रोत्साहन प्रमुखी पावनताप और महावीर व अनुयायियों के सिद्धांत और दूसरा जीवन कर सकता है।

—डॉक्टर राधाचिनोद पाल



जैन लोग प्रचुर परिमाण में बिगुन लावापयोगी गादियं बं-  
गण हैं।

—प्रो जोहान हटल

पश्चिम के देशों में इस आशयका मत फैला है कि, मनुष्य मनुष्य  
का जन्म करते समय भी मोहों का प्रियविचार का अनुभव नहीं करते।  
इसलिए, जैन धर्म एक ऐसा अद्वितीय धर्म है कि, जो प्राणी मांस की श्राद्ध  
करने के लिए मियांमक प्रेरणा देता है। जैन लोग गान्धीजी या बन्धुओं का  
भा दूधरे प्राणियों की श्राद्ध का रक्षण करते हैं। मैंने ऐसा देखा मात्र किसी  
सूतक धर्म में नहीं पाया।

अमेरिकन महिला ओडोराजोरी  
(४२२२ के दिल्ली के भाग्य में)



# पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण

[ १ ]

## सेवन्तीलाल माणिकलाल-कथित पूर्वजन्म का विवरण

एकबार तीन वर्ष की उम्र में ही काद कोइ नाम सुनकर मुझे ऐसा लगता कि, यह नाम मैंने पहले कभी सुना है और किन्हीं वस्तुओं को देखने पर लगता कि, इसे पहले कभी मिला है। इस प्रकार विचार करते करते मुझे ऐसा लगने लगा कि, किसी भव में मुझे पत्नी थी और बच्चे थे। ये विचार मुझे ठट गये थे कि, एक दिन मरे पिता ने मुझे कड़वी या एक टुकड़ा दिया। मैंने उनसे कहा—“मैं तो आपका इकलौता पुत्र हूँ। आप मुझे इतना छोटा सा टुकड़ा क्या कर रहे हैं? जब भव में मुझे ६६ बच्चे थे पर मैं तो उन्हें पूरी पूरी कड़वी खान को दता था।” मेरी बात सुनकर घर में सबको आश्चर्य होन लगा कि, यह नन्हा-सा बच्चा भग्न क्या कह रहा है? पर, मेरी बात पर किसी ने अधिक ध्यान नहीं दिया। बात में मैं बच्चे लगा—“मैं भ्रातृ था और मेरा नाम कलचन्द था। पाटन में मेरा घर था। मेरी तीन पत्नियाँ थीं और मुझे ६ बच्चे थे।” मैं बच्चों का नाम बताता। मुझे ६ लड़कें और एक लड़का थी। पूना में मेरी दो दुकानें थी—एक कपड़े की और दूसरी गोले की। ५६ वर्ष का मरा आयुष्म था। मेरी तीन पत्नियों में दो पत्नियाँ बहुत अच्छी न थीं पर एक बड़े शिष्ट स्वभाव की थी। मरने से पूर्व मुझे लकवा लग गया था अतः मैं लकड़ी लेकर चलता था।

मुझे एक बहन थी जो उम्र में मुझसे तान वर्ष बड़ी थी। वह मेरे घर में काम-काज सँभालनेवाली थी। उसके पति का नाम

ठाकरडो था। मेरी उमा माँ उस समय मरी रहन थी। पाप्न म तबो-गीवाड़ा में मेरा घर था। उसमें हमारी का पंडू था। मने आत्माराम जी महाराज, कमलगूरि जा महाराज तथा उमदविजय जी महाराज का दान किया था।

उसने शास्त्र के दूसरे भय म न ब्राह्मण हुआ। मेरा आयुष्य २७ वर्ष मान रहा। मेने विवाह नहीं किया। ब्राह्मण वाले भय के सम्प्रदाय में मने १०८ इतनी हा बात जानता हूँ।

मैं इन बातों को कहता तो घर के हर व्यक्ति कहते कि यह क्या है ट पर, वे इस पर कुछ विशेष ध्यान न देते।

एक समय मेरी माता पाप्न गयी। उस समय मरी उम्र केवल तीन ही वर्ष की थी। अज म भी माँ के साथ गया। स्टेशन पर उतरा। इस भय में पाप्न जाने का यह मंग पहचान ही अरसर था। मने माँ से कहा—“आप लोग मेरा कदना सच नहीं मानती थीं। पर, आज मैं अपना घर आपको बताऊँगा।” माँ ने कहा—“बताओ! म भी तुम्हारा घर देखूँ।” म माँ को तबो-गीवाड़ा म आने घर ले गया। घर अच्छी स्थिति में नहीं था। उसे दिखा कर मने कहा—“यह मरा मागन है।” दो चार पड़ोसियों को बताया। महल्ले के सभी दबमन्त्रियों ( घर मन्दिर ) में गि गया। महाराज माहन का पोगा दिना कर बताया कि, ‘यह आत्माराम जी महाराज हैं,’ ‘यह कमलगूरि महाराज हैं,’ और ‘यह उमदविजय जी महाराज हैं।’ उस पूरा दक्कन को जानकर पाप्न में सब लोग नतमस्तक हो गये। हजारों लोग मुझे दरसने आते। लगभग २४ मास ऐसा ही चलता रहा। गायकवाड़ सम्भार न बाँट करन के लिए कुछ अफसर पाप्न भेजा। म भी पाप्न बुलाया गया।

उन लोगों ने मुझसे कहा—“अन्य कोई तथ्य बताओ।” उस समय पाप्न में सुखड़ीवट म डाह्याचद आलमचर श्री पढ़ी चलती थी।

वहाँ मेरा ( पाग्न के भव के नाम बेजलचंद्र रामचन्द्र के नाम का ) गता चलता था । मैं उस दुकान पर जाँच करनेवाले व्यक्तियों को ले गया । उनके सामने ३० ४० वर्ष पुराने कागज निकाल कर अपना गता निकलवाया ।

पाग्न के भव का मर पुत्र का पुत्र मुक्त दखने के लिए आया । उस दृश्य ही मैं बोला—“तुम तो मेरे बच्चे हो । तुम्हारा नाम मणिपाल है ।” उसने भी मेरी बात स्वीकार कर ली ।

सेवन्तोलाल ( चाणसमा )

## [ २ ]

छतरपुर के शिक्षा विभाग के निरीक्षक श्री मनोहरलाल मिश्र की नीरवस्था अपने पूरे जन्म का चार्ते बताती है । मिश्रजी एक दिन अपनी पुत्रा के साथ जलपुर गये । वहाँ वे किसी ऐसी जगह की तलाश में थे, जहाँ वह पानी पी सकें । इसी बीच स्वर्णलता ने चाय की एक ठोड़ी-सी दुकान दिखा कर कहा—“चलिए पिता जी, यह अपना ही स्थान है । इसमें चाय-पानी कर लीजिए ।” यह सुनकर भी मनोहरलाल मिश्र को हुआ कि, इस लड़की को भ्रम हो गया है । मैं तो किसी से नहीं पहचान भी नहीं है, फिर यहाँ अपना होना कहाँ से आ गया ।” पिता की चिन्ता किये बिना स्वर्णलता उस छोटे से होना में रुक गयी । और, अपने पूर्वजन्म के छोटे भाई हरिप्रसाद को सम्बोधित करके बोली—“हरी ! मुझे पीने के लिए पानी तो देना । बड़ी प्यास लग रही है ।”

अज्ञात लड़की के मुख से अपना नाम सुन कर हरिप्रसाद पाठक चिंतित रह गया । उसे आश्चर्य में पड़ा देकर लड़की बोली—“हरी तुम मेरी पहचानता । मैं तुम्हारी बड़ी बहन किशोरी हूँ ।” उसकी बात सुन कर हरी आन पुरे कुटुम्ब को बुला लाया । सन् १९३९ तक उस

परिवार में बितने भी थीं थे, सब के नाम उस लड़की ने बताये। छोटी उम्र में उसका भाई जिस नाम से बुगल खाते, उन नामों को स्मरलता ने बताया। उसके बाद उस लड़की का समुराल पण के लोग बुलाये गये। उसने अपने तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ को पदचात लिया। उसमें एक बच्चे ने अपना नाम गलत बताया तो स्मरलता बोली—  
“माता के सामने झूठ बोलते लज्जा नहीं आती।”

उसके बाद उसने पूरजाम के पति चिन्तामणि पाण्डेय आये। लड़की से पूछा गया कि यह कौन है? पूछे जाने पर यह १० वर्ष की लड़की शरमा गयी। और, बोली—“यह यहाँ हैं, जिनसे मेरा रिवाज हुआ था। पायकी म नैऋत म समुराल गयी थी। तब यह छोड़े पर थे। रास्ते में हमका घोड़ा भड़क गया था और चार जानमियों को दबाने के बाद छोड़े ने हट कर दिया था। ये बहुत घायब हो गये थे और महीनों चारपाइ पर पड़े रहे।” यह सब सुनकर उसके पिता मनोहरलाल मिश्र का माथ उपस्थित सभी चरित रह गये।

उस लड़की की परीक्षा लेने के लिए मागर विश्वविद्यालय के उप कुलपति श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, मनोविज्ञान के पंडित श्री मोहनलाल पारा और गंगापुर के विख्यात मानसशास्त्री श्री एच्० ए०० धनवी आये। उसकी परीक्षा के बाद उन लोगों ने मत व्यक्त किया—“इस लड़की को अपने पूरजाम का यहाँ बाद है, हममें शक नहीं है।”

इन लोगों के समक्ष उस लड़की ने कहा—“१९१९ में मेरी मृत्यु हुई। इस जन्म से पहले मैं सिल्लेट (आसाम) में पैदा हुई थी। यहाँ मेरे घर के लोग गाने का काम करते थे।” उस लड़की ने अममी भाषा के दो गाने स्वर गाकर सुनाये। उसने कुछ लोगों के नाम भी

झाये। वहाँ ९ वर्ष की उम्र में मरी मृत्यु हुई। उस वक्त से  
जन्म हुआ।

द्वितीय जन्म का ज्ञान की सत्यता की जाँच के लिए लड़की का अष्टम ले जान की तैयारी कर रहे हैं। १० वर्ष की लड़की ने अपने पूरे जन्म के लिए अपनी बाँधी। स्वयंसेवक पूनम के सुख-दुःख को भली-भाँति जानती है। उसके पूरे जन्म के लिए भाद और उसके जन्म से मुक्त हैं।

विशेषों के अनुसार आत्मा अपने ही जन्म में  
प्रेमियों में जन्म लेते हैं। यह मान्यता है कि यह जन्म  
हो जाता है।

धर्म भी यह लड़की जन्मपुर में है। इस वक्त में  
और छोटे भाद भी जन्मपुर आ गये हैं। इस जन्म में  
उतरते थे, वहाँ इस लड़की को दाने के लिए  
लोगों की भीड़ लगी रहती है।

—  
१८७३ ई.स.

[ ३ ]

बली, वहाँ पुनर्जन्म में विरक्त हो गई।  
पुनर्जन्म की कहानी प्रत्यक्ष हो गयी।  
श्री दशमत उल्ला अन्सारी जब हस्त  
यहाँ पढ़ाने गये, तब उनके पत्रिका में

हुस कर उसकी विधवा पुत्रनू फातिमा का हाथ पकड़ लिया और कहा कि "तुम ता मरी मरी हो, फातिमा ।" फातिमा बच्चे के मुँह से अपना नाम सुन कर डेहोश हो गयी । कहते हैं कि लड़के की सारी पूर स्मृतिपों जाग उठी और वह बिना किसी के बताये ही अचरित ममान म इस तरह यत्नार करते हुए कि जैसे उसीका जाना पहचाना घर हो, पूर्वजम की बीरी के भीतरी कम में जाकर पूर परिचित अपनी कुर्सी पर बैर गया और फातिमा के समुर को अवा अवा कह कर पुकारने लगा । फातिमा पान लगा रही थी, लड़के ने जाते ही कहा, "फातिमा, हम भी पान प्यायय ।" पता लगा कि फातिमा के पति फारुग की मृत्यु पाँच वष पूर हुई थी । जब सभी लोग एकन हो गये, तब लड़के ने पूर्वजम की कहानी सुनाते हुए एसी सारी घातें सुनायीं, जो कमल फातिमा और फारुग ही जानते थे । उसने कहा कि मने अपने भाइ को, जो पाकिस्तान म है, ५ हजार रुपये भेजे थे और ३ हजार रक में जमा है । उपमुन व्यक्ति लाहीर में त्रापार करता है और फारुग का इरादा भी वही रहने का था, इसका रहस्योद्घाटन लड़के ने किया । उसने पहले के भाइ उमर आदिल का नाम भी बताया । यह भी कहा कि मरे समुर के यहाँ से एक बडूक चोरी गयी थी, जो यामनव में सच्ची घटना है । लड़के की बातें सुनकर उनके पूर्वजम के पिता ने कहा कि यद्यपि मैं पुनजम में विश्वास नहीं करता, तथापि जो आँखों क सामने देग रहा हूँ, उससे इन्कार भी नहीं कर सकता ।

—'नयभारत टाइम्स' ( हिन्दी )

ता० २८ ६ ५६ रविवार

[ ४ ]

हारीज । ठकर शिराम की ८ वर्षीया पुत्री हीरा अपन पूर जम की नया बताती है । उसके पिता उसे लेकर हारीज आये हैं ।

जुनस लोग उस देखने आते ॥ और कितने हा श्रद्धालु लोग  
 सो उसक समस्त पगड़ी और टोपा उतार कर हाथ जोड़ कर उसका  
 शरण करते हैं ।

यहाँ यह अपने पूरा जमान की चान म मिलन आती है । उसने  
 अपना चान से यक्षपन की कितनी ही गतें कही ।

—ननसत्ता

१२ जनवरी १९९१

## [ ५ ]

एक बार मुझे रत्नामेरि चिन्ने क एक छोटे से गाँव म जान का  
 अवसर मिला । वहाँ वहाँ म रुका था उसक पड़ोस में ही रत्नामेरि नामक  
 एक ब्राह्मण रहता था । रत्नामेरि को एक आठ बर्षोंवा पुत्री थी । ठण्डा  
 नाम रम्मा था । एक दिन उस घर म शेर मुनकर बा म वहाँ  
 गया, तो पता चला कि, रम्मा मद्रास जाने क लिए बिना क रहा है  
 और कई दिनों से उसने गाना खाना भी बन्द कर रखा है । जहाँ जहाँ  
 थी कि पूव मन में बैकटराव नामक उसे एक पुत्र था जो बहुत बड़ा  
 मित्रना चाहती है । मेरे प्रस्ताव पर रत्नामेरि मद्रास जान के  
 गया और दूसरे दिन हम तीनों मद्रास चउ पड़े ।

मद्रास पहुँच कर हम लोगों ने एक तौगा किन्ना और वहाँ  
 रामने से चल कर एक बँगले पर पहुँचे । उस समय बैकटराव  
 पढ़ रहे थे । रम्मा ने बैकटराव से इस रूप में बगल किन्ना और वहाँ  
 अनन्त ऐसी बातें कथायी कि, बैकटराव को भी बहुत दुःख और  
 भी उसे अपनी माता होना स्वीकार करना पड़ा ।



## [ ६ ]

उत्तरी प्रान्त के एक ग्राम क बनिया की मुन्नी-नामक दो बच की लड़की अपने २ पृथ्व भनों की कथा सुनाती है। वह कहती है कि, वह पून भव में उसा ग्राम के केशव नामक ब्राह्मण की पुत्री थी और २१ वर्ष की उम्र में ताना बनाते समय साड़ी में आग लग जान से मृत्यु को प्राप्त हुई थी। केशव ने बात स्वीकार की।

उससे पून भव में वह अपने को मथुरा के एक चौब पारंगार की कन्या बताती है और उस भव के अपने पुन का नाम आदि भी सही सही बताती है।

—किस्मत

दीपोत्सवी अंक सन्वत् २०१९

## [ ७ ]

‘ब्राह्मणवाणा’ नामक एक मासिक पत्र के सम्पादक गोदामा श्री ब्रह्मदत्त ने गिरारपुर के एक पॉन वर्ष के बच्चे की कथा की पुष्टि की है जो अपने पुन भव की कथा बताता है। उस बच्चे की कथा काशी के प्रकाशित ‘समाग’ में भी प्रकाशित हुई थी।

—किस्मत

दीपावली अंक १९६० ई०



